RNI Reg No MPHIN/2007/27127

ISSN: 3048-9954 (Print)

अहिंसा, आगम और विज्ञान से आलोकित श्रेष्ठतम पत्रिका

भाव विज्ञान

BHAV VIGYAN

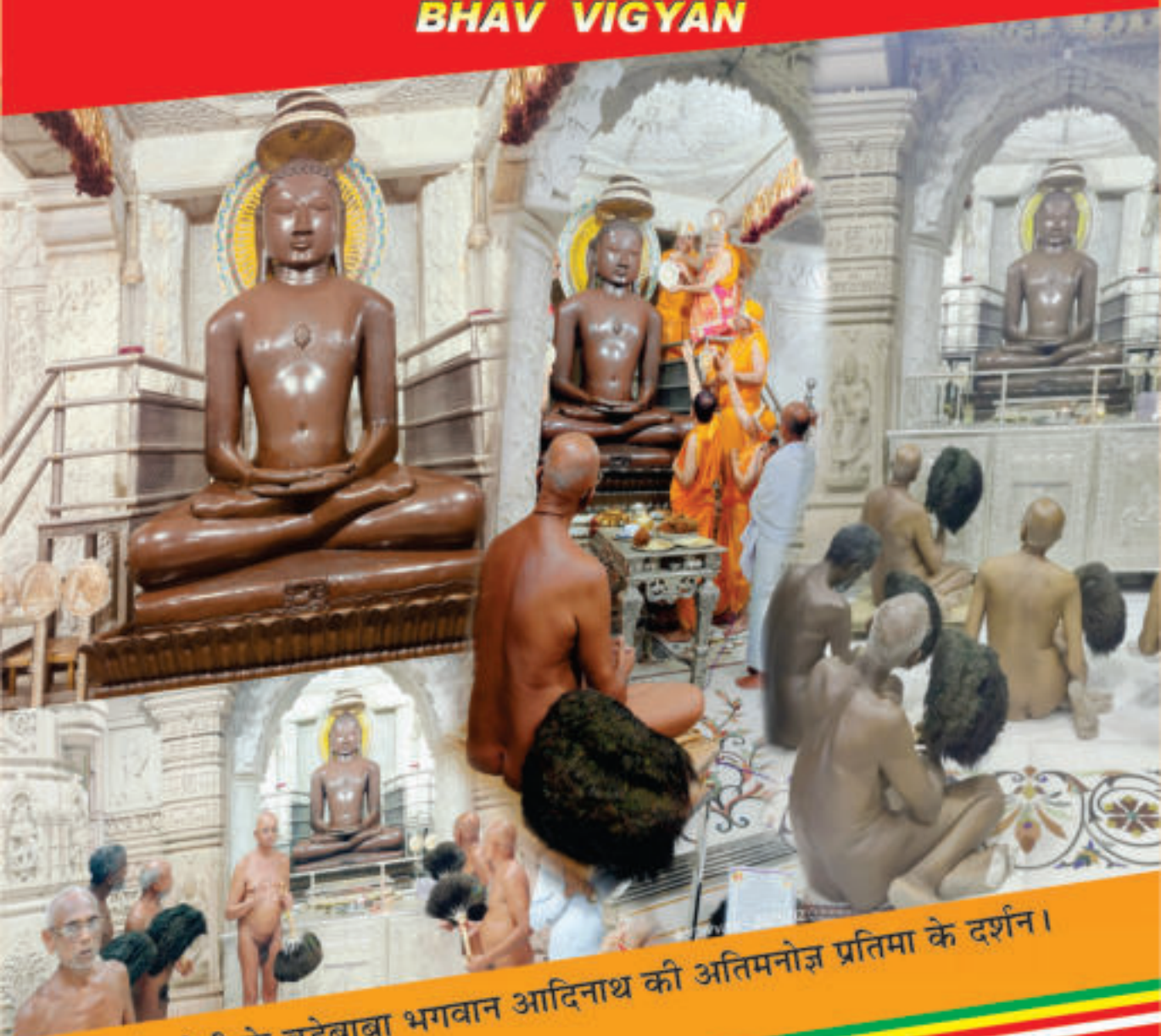

चाँदखेड़ी के बड़ेबाबा भगवान आदिनाथ की अतिमनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन।

वर्ष : उन्नीस

अंक : इकहत्तर

वीर निर्वाण संवत् - 2551

चैत्र शुक्ल, वि.सं. 2082, मार्च 2025

विद्वत् संगोष्ठी सम्मान प्राप्त करते हुये एकलव्य यूनिवर्सिटी दमोह के कुलपति पवन जैन, प्रो.डॉ. ऋषभचंद जैन, डॉ. आशीष जैन आदि।

झालरापाटन में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज की अगवानी उपरांत गुरु पूजन करते हुये भक्तगण।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ का संजय मित्तल रामगंजमण्डी की कोटा पत्थर माइंस/धर्मकाँटा पर पदार्पण हुआ।

झालरापाटन स्थित जैन सरस्वती भवन ग्रंथालय में ताड़पत्रों के ग्रन्थों का अवलोकन करते हुये आचार्य श्री ससंघ।

झालरापाटन जूनी नसिया में प्राचीन प्रतिमाओं के दर्शन करते हुए आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के दर्शनार्थ पधारे पुलिस अधिकारी झालरापाटन।

चंद्रोदय तीर्थ चाँदखेड़ी में आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ की अगवानी को तैयार कमेटीगण।

अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी के बड़ेबाबा आदिनाथ प्रभु के दर्शन करते हुये आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ।

आशीर्वाद व प्रेरणा
संत शिरोमणि आचार्यश्री 108
विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित
आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज।

• परामर्शदाता •
प्राचार्य डॉ. पं. शीतलचंद जैन, जयपुर मो. 9414783707
प्रो. डॉ. ऋषभचंद जैन, एकलव्य यूनिवर्सिटी, दमोह मो.: 9431441951

। सम्पादक ।
डॉ. अजित कुमार जैन
MIG-8/4, गीतांजली काम्प्लैक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल-462003 मो. : 7222963457, व्हाट्सएप: 9425601161
email : drajitjn@aarjavvani.com

• प्रबंध सम्पादक •
इंजीनियर शोभित जैन, एम. टेक.
'आर्जव छाया', पारस नगर, दमोह मो. 8989459635
email : ershobhitjn@aarjavvani.com

• संपादक मंडल •
कुलपति **डॉ. वी.के. जैन, सह-संपादक**, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, दिल्ली रोड, मुरादाबाद (उ.प्र.) मो.: 9997692191
email : drvkjn@aarjavvani.com
बहिन इंजी. ऋषिका जैन, सह-संपादक
आर्जवछाया, पारस नगर, सागर नाका, दमोह (म.प्र.)
email : brrisheekajn@aarjavvani.com
प्रोफेसर. डॉ. सुधीर जैन, सह-संपादक
85, डी के कॉटेज, बावड़ियाकला, भोपाल
email : profdrsudhirjn@aarjavvani.com
पं. जय कुमार 'निशांत', सह-सम्पादक
पपोरा चौराहा, टीकमगढ़
email : ptjaynishant@aarjavvani.com
डॉ. संजय जैन (एडवोकेट), सह-संपादक
179, समर्थ सिटी-1, गोम्मटगिरी के पास, इंदौर-459112
email : drsanjayjn@aarjavvani.com
डॉ. श्रीमती अल्पना जैन (मोदी), सह-सम्पादक
गणेश कॉलोनी, नया बाजार, ग्वालियर-474009
email : dralpnamodi@aarjavvani.com
इंजी. महेन्द्र कुमार जैन, सह-संपादक
132, डी के कॉटेज, बावड़ियाकला, भोपाल-462039
email : engmahendrajn@aarjavvani.com

• प्रकाशक •
श्रीमती सुषमा जैन धर्मपत्नी डॉ. अजित जैन
MIG-8/4, गीतांजली काम्प्लैक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल-462003 मो.: 9479978084
email : sushmajn@aarjavvani.com
वेब साइट : **www.aarjavvani.com**
email : bhav.vigyan@aarjavvani.com

विषय : धार्मिक पत्रिका | प्रथम प्रकाशन वर्ष : 2007 | भाषा : हिन्दी | प्रारूप : अहिंसा एवं जैन धर्म से संबंधित आलेख
RNI Reg No MPHIN/2007/27127 ISSN: 3048-9954 (Print)

त्रैमासिक
भाव विज्ञान
(BHAV VIGYAN)

वर्ष-उन्नीस
अंक - इकहत्तर

पल्लव दर्शिका

विषय वस्तु एवं लेखक		पृष्ठ
1. 'तीर्थोदय काव्य' में षोडश भावनाओं की महिमा में वर्णित विभिन्न उपमाएँ	-प्रो.(डॉ.) रतनचन्द्र जैन	2
2. तीर्थोदयकाव्य में प्रतिमा धारण करने की प्रेरणा का सम्यक्-विवेचन	-कु. आकृति जैन	6
3. तीर्थोदय काव्य में पिच्छिका का महत्वपूर्ण उपयोग	-श्री देवन (दास) जैन	13
4. तीर्थोदय काव्य में सम्यग्दृष्टि आत्मा के प्रशमादिक चार गुणों का सम्यक् विश्लेषण	-आर्यिका रत्न 105 प्रतिभामति जी	16
5. तीर्थोदय-काव्य में सल्लेखना व पञ्च-मरणों का विवेचन	-पं राजेश जैन शास्त्री	23
6. तीर्थोदय-काव्य में अष्ट-मद विवेचन	-डॉ.पल्लवी जैन	28
7. आध्यात्मिक एवं समीचीन व्यवहारिक जीवन में आचार्य श्री आर्जवसागर के साहित्य का योगदान	-कोमलचंद जी प्रिंसिपल	33
8. समाचार		38

लेखक एवं उनके विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
भाव विज्ञान से संबंधित समस्त निर्णयों/न्यायों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

'तीर्थोदय काव्य' में षोडश भावनाओं की महिमा में वर्णित विभिन्न उपमाएँ

-प्रो.(डॉ.) रतनचन्द्र जैन, शाहपुरा, भोपाल मो.9425018066

तीर्थोदय काव्य विश्वविख्यात दिगम्बर जैनाचार्य प.पू. श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य प.पू. आचार्य श्री आर्जवसागर जी द्वारा रचित श्रेष्ठ कृति है। उसमें षोडशकारण भावनाओं, श्रावकाचार, श्रमणाचार, अर्हद्भक्ति आदि चरणानुयोग के सिद्धान्तों पर पद्यात्मकशैली में प्रकाश डाला गया है। भाषा सरल है और अर्थ को लक्षणात्मक, व्यंजनात्मक, प्रतीकात्मक और अलंकारात्मक शैली में व्यक्त करने के कारण भाषा प्रभावोत्पादक, रोचक और मर्मस्पर्शी बन गयी है। दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को जब अलंकारादि से परिपूर्ण व्यंजक शैली में प्रस्तुत किया जाता है, तब उन सिद्धान्तों की सत्यता हृदय को छूते हुए आसानी से मन में उतर जाती है। इसका एक उदाहरण दिया जा रहा है। प्रसिद्ध शायर निदा फ़ाजली का यह शेर देखिए-

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है।
मिल जाय तो मिट्टी है, खो जाये तो सोना है॥

इस शेर में शायर ने दुनिया को जादू का खिलौना कहकर रूपक अलंकार के द्वारा दुनिया की चीजों के मायावी (विचित्र) स्वभाव को प्रभावशाली रीति से व्यंजित किया है। दुनिया की चीजों का मायावी या जादुई स्वभाव यह है कि जब तक वे मिलती नहीं हैं, तब तक बहुमूल्य प्रतीत होती हैं, किन्तु मिल जाने पर मूल्यहीन लगने लगती हैं। इस विचित्र स्वभाव की व्यंजना शायर ने अप्राप्त अवस्था में वस्तुओं को सोना और प्राप्त अवस्था में मिट्टी कहकर इन रूपकात्मक शब्दों द्वारा की है। ये सोना और मिट्टी कहकर इन रूपकात्मक शब्दों द्वारा की है। ये सोना और मिट्टी रूप रूपकात्मक शब्द चमत्कारी अर्थात् बहुत प्रभावोत्पादक गूढ़ार्थ के व्यंजक और रोचक बन गये हैं। इसलिए इनके द्वारा दुनिया की चीजों के मायावी स्वभाव की सत्यता आसानी से हृदय में उतर जाती है। इस प्रकार व्यंजक (अर्थगाम्भीर्य से भरे हुए) शब्द के प्रयोग में चमत्कार होता है, सामान्य शब्द के प्रयोग में नहीं। किसी अत्यन्त भद्र और परोपकारी मनुष्य को अत्यन्तभद्र और परोपकारी कहने में चमत्कार नहीं है फ़रिश्ता या देवता कहने में चमत्कार है। किसी अत्यन्त दुष्ट स्त्री को अत्यन्त दुष्ट कहने में प्रभावोत्पादकता नहीं है, चुड़ैल कहने में है।

संसार की वस्तुओं को खिलौना कहकर यह व्यंजित किया गया है कि उनका कभी सोना कभी मिट्टी लगने वाला स्वरूप मनुष्य को जिन्दगी पर धोखे में डालने का खेल खेलता रहता है। उसे कभी लुभाता है, कभी निराश करता है पर कभी सन्तुष्ट नहीं होने देता। संसार की वस्तुएँ वस्तुतः मिट्टी ही हैं, लेकिन वे सोने का भ्रम देकर मनुष्य को अपने पीछे दौड़ाती हैं और अन्त में मृगमरीचिका में प्यासे मृग की तरह दौड़ा-दौड़ाकर प्यासा ही मरने के लिए छोड़ देती हैं। इतना गंभीर जीवन दर्शन उक्त शेर में 'खिलौना' शब्द के आरोप से व्यंजित किया गया है। आचार्य श्री आर्जवसागर जी ने भी उपमा अलंकार के प्रयोग से कथन को प्रभावोत्पादक बनाकर षोडशभावनाओं के अर्थ को काव्यजनित आनंदानुभूति कराते हुए **व्यंजित** किया है। उपमा का अर्थ है- एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ से समानता बतलाना। पर, समानता तो अन्य अलंकारों में भी बतलायी जाती है। अन्तर

होता है सिर्फ शब्द प्रयोग की शैली का। यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है- 1.चाँद सा मुखड़ा। (उपमा) यह उपमा अलंकार का उदाहरण है।, 2.मुखचन्द्र एकाएक उदित हुआ (रूपक), 3. (किसी रमणी के मुख को देखकर) यह चाँद अचानक कहाँ से प्रकट हो गया? (रूपक अतिश्योक्ति), 4. यह मुख तो चन्द्रमा को भी मात कर रहा है। (व्यतिरेक), 5.यह मुख नहीं है, यह तो पूर्णिमा का चन्द्र है। (अपह्नुति), 6.यह मुख है या चन्द्रमा (सन्देह)।

अब 'तीर्थोदयकाव्य' में षोडशकारण भावनाओं में प्रयुक्त उपमालंकार के उदाहरण दृष्टव्य हैं। प्रथम भावना दर्शन विशुद्धि है। सम्यग्दर्शन को विशुद्ध बनाने के लिए षट् अनायतनों का त्याग आवश्यक है, क्योंकि सम्यग्दर्शन को मलिन बनाने वाले कारणों में छह अनायतनों की संगति और सेवा भी एक कारण है,जैसा कि आचार्य श्री आर्जवसागर जी ने कहा है-

देव सरागी, सग्रन्थ गुरु वे, कुशास्त्र भव वर्धक जानो।
अरु इन तीनों के सेवक सह, षट् अनायतन पहचानो॥
नहीं उपासक इनका जो भवि, उसको सद्दृर्शी जानो।
उपल-नाव-सम तज अनायतन, चले मोक्षपथ यह मानो॥ 38॥[1]

ऊपर प्रयुक्त व्यंजक शब्द का अर्थ- प्रकरणविशेष में ऐसे शब्द का प्रयोग करना, जिससे उसके प्रचलित (मुख्य) अर्थ को छोड़कर प्रकरण के अनुरूप दूसरा अर्थ अपने आप समझ में आ जाय, वह शब्द व्यंजक कहलाता है। ऐसे अर्थ को व्यंजित करने की शक्ति व्यंजकता कहलाती है।

कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र तथा इन तीनों को मानने वाले छह अनायतन कहलाते हैं। इसकी संगति और आराधना से सम्यग्दर्शन मलिन होता है। अतः सम्यग्दर्शन को विशुद्ध बनाये रखने के लिए इन से दूर रहना चाहिए। इनकी उपासना कितनी खतरनाक है इसका बोध आचार्यश्री ने इन्हें 'उपलनाव' की उपमा देकर कराया है। 'उपलनाव' का अर्थ है पत्थर की नाव। काठ की नाव तो नदी के पार स्वयं पहुँचती है और बैठने वालों को पहुँचाती है, किन्तु पत्थर की नाव स्वयं भी डूबती है और बैठने वालों को भी डुबा देती है। ऐसे ही कुदेव और कुगुरु स्वयं भी संसार सागर में डूबते हैं और अपने भक्तों को भी डुबोते हैं। इतना गूढ़ और भयंकर अर्थ कवि ने 'उपल नाव' की उपमा द्वारा व्यंजित किया है, जो श्रोताओं को इस खतरे से सावधान करने में प्रभावशाली भूमिका निभाता है।

निःशंकित आदि आठ अंगों से युक्त सम्यग्दर्शन को सेना से युक्त राजा की उपमा देकर, जैसे राजा सेना के बल से शत्रुओं को जीत लेता है, वैसे सम्यग्दृष्टि मनुष्य आठ अंगों की शक्ति से कर्मशत्रुओं को जीत लेता है, इस अर्थ को व्यक्त किया गया है। देखिए-

दृढ़-सेना वाला राजा वह, शीघ्र शत्रु को हर लेता।
तथा अंग-सह सम्यग्दर्शन कर्मशत्रु को हर लेता॥
निःशंकित आदि अंगों से, दर्शन शुद्ध बनायें हम।
सम्यग्ज्ञान-चरण भी पाकर मोख-सुखी बन जायें हम॥ 72॥[2]

अब निःकांक्षित अंग देखिए-

धर्म-कार्य को करने वाला, भव-सुख कभी नहीं चाहे।
मोक्ष पहुँचना लक्ष्य रहा है, ध्रौव्य-सुखी बनना चाहे॥
लक्ष्य धान्य पाने का होता, कौन घास पाना चाहे?
घास स्वतः ही मिलती भैया, फल शिव जो पाना चाहे॥ 80॥[3]

जैसे मनुष्य खेत में अन्न बोता है, तो अन्न पाने के लिए ही बोता है, भूसा पाने के लिए नहीं। भूसा तो अन्न के साथ अपने आप प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार मोक्षसुख पाने के लिए तो व्रत-तप आदि साधना की जाती है, उससे साथ में बँधने वाले पुण्य के उदय से संसार की सुख सामग्री स्वतः मिल जाती है, अतः सम्यग्दृष्टि को उसकी आकांक्षा नहीं करनी पड़ती। यहाँ अन्न और मोक्ष सुख तथा भूसा और संसार सुख की उपमा द्वारा तर्क संगत एवं मनोरंजक ढंग से निःकांक्षित रहने की आवश्यकता बतलाई गई है।

निर्विचिकित्सा अंग-

योद्धा जैसे रण-आँगन में, तेज धार हि असि का मूल्य।
अधिक समझता, नहीं देखता, म्यान सुरूपी रही अमूल्य॥
मोक्षमार्ग में ज्ञानी मुनिवर, धर्म-गुणों से शोभित हों।
बने विरागी, नश्वर तन को, नहीं सजा के मोहित हों॥ 86॥[4]

रणभूमि में जैसे योद्धा तीक्ष्ण धारवाली तलवार को ही महत्वपूर्ण समझता है, म्यान की सुन्दरता को नहीं। वैसे ही सम्यग्दृष्टिभी ज्ञान-वैराग्य-चारित्रादि गुणों को मूल्यवान मानता है, नश्वर तन के शृंगार को नहीं। इस पद्य में ''जैसे'' और ''वैसे'' शब्दों द्वारा उपमा का प्रयोग कर कथन को रोचक बनाते हुए मुनियों की मलिन देह घृणा के योग्य नहीं है। इस निर्विचिकित्सा अंग के औचित्य को बखूबी व्यंजित किया गया है।

इसी प्रकार अमूढ़ दृष्टि अंग के 93 वें पद्य के-

'प्रभु-गुण-कीर्तन करता धर्मी, प्रभु-सम बनता सुखी सदा।'[5]

इस वाक्य में प्रभु के गुणों का कीर्तन करने वाले को प्रभु के समान बन जाने की उपमा देकर उसमें प्रभु के समस्त गुणों के आ जाने की अर्थात् क्रमशः मोक्ष पाने की व्यंजना की गयी है।

उपगूहन अंग के निम्नलिखित पद्य में प्रयुक्त उपमा की चारुता देखिए-

धर्मी-नारी गुप्तांगों को, सदा छिपाती रहती है।
धर्मी-मति वैसे धर्मी के, अवगुण ढकती रहती है॥ 100॥[6]

भाव यह है कि जैसे धार्मिक स्त्री अपने गुप्तांगों को सदा छिपाकर रखती है ताकि उसके शीलधर्म में दोष न लग जाये, वैसे ही धर्मप्रेमी व्यक्ति अपने साधर्मी के दोषों को छिपाकर रखता है, ताकि उसका धर्म; लोक में बदनाम न हो जाये। उपगूहन अंग का यह अर्थ धर्मानुरागी नारी के अपने गुप्तांगों को छिपाकर रखने की उपमा

द्वारा बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त हुआ है।

अनित्यानुप्रेक्षा के पद्य की-

यौवन धन गृह परिजन जो भी, इस जीवन में दिखते हैं।

मेघाकार व इन्द्रधनुष-सम, ज्ञानी नश्वर लखते हैं॥ 374॥[7]

इन पंक्तियों में मेघों के आकार और इन्द्रधनुष की क्षणभंगुरता की उपमा द्वारा यौवन, धन आदि की क्षणभंगुरता को स्पष्ट किया गया है।

अशरण अनुप्रेक्षा की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए-

हरि के आगे जैसे मृग का, शरण रहे न कोई है।

उसी तरह इस जग में देखो, अमर रहे ना कोई है॥ 375॥[8]

इन पंक्तियों में कहा गया है कि जैसे सिंह के सामने आ जाने पर मृग को कोई नहीं बचा सकता, वैसे ही मृत्यु का समय आ जाने पर जीव को भी कोई नहीं बचा सकता। यहाँ आयु पूर्ण होने पर जीव की मृत्यु अनिवार्य है इस की सत्य प्रतीति सिंह के सामने आ जाने पर मृग के प्राणों का अन्त अनिवार्य होने के सत्य द्वारा करायी गयी है। अतः यहाँ उपमा अलंकार के प्रयोग से कथन में प्रभावोत्पादकता आ गयी है।

ये तीर्थोदय काव्य में प्रयुक्त उपमा अलंकार के कतिपय निदर्शन हैं, जो आपके आस्वादन एवं मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे तो प्रस्तुत काव्य में उपमा के सैकड़ों प्रयोग मिलते हैं, लेकिन आलेख की पृष्ठ संख्या निर्धारित कर दिये जाने से इतने ही उदाहरणों तक सीमित रहना पड़ा।

आचार्यश्री आर्जवसागर जी द्वारा किया गया उपमा अलंकार का प्रयोग अत्यन्त सफल रहा है। प्रयुक्त उपमानों के द्वारा शब्दों में चमत्कारिता आई है अर्थात् उनमें अद्भुत प्रभावोत्पादकता एवं व्यंजकता का प्रादुर्भाव हुआ है जिससे काव्यकृति आह्लादकता से मंडित हुई है। प्रसिद्ध प्राचीन काव्यशास्त्री आनन्दवर्धन ने कहा है कि व्यंजकता के संस्पर्श से अलंकारों में चारुत्व आ जाता है-

वाच्यालङ्कारवर्गो यं व्यंग्यांशानुगमे सति।

प्रायेणैव परांछायां विभ्रल्लक्ष्ये निरीक्ष्यते॥3/36॥[9] ध्वन्यालोक

आशा है आचार्य श्री आर्जवसागर जी की लेखनी से ऐसी और भी अनेक काव्यकृतियाँ प्रसूत होंगी और श्रावकों के कल्याण में साधक बनेंगी। प.पू. आचार्यश्री के चरणों में कोटिशः नमन।

आगम प्रमाण-

1. तीर्थोदय काव्य, आचार्य आर्जवसागर जी, पद्य-38, पृष्ठ 13
2. वही; पद्य-72, पृष्ठ 20
3. वही; पद्य-80, पृष्ठ 21
4. वही; पद्य-86, पृष्ठ 22
5. वही; पद्य-93, पृष्ठ 24
6. वही; पद्य-100, पृष्ठ 25
7. वही; पद्य-374, पृष्ठ 87
8. वही; पद्य-375, पृष्ठ 88
9. ध्वन्यालोक-3/36

तीर्थोदयकाव्य में प्रतिमा धारण करने की प्रेरणा का सम्यक्-विवेचन

-कु. आकृति जैन, अशोकागार्डन, भोपाल

प्रतिमा-धारण करने से पहले की भूमिका- आचार्य श्री 108 आर्जवसगार जी महाराज ने तीर्थोदय-काव्य में कहा है कि-

श्रावकजन की प्रतिमा ग्यारह, कहीं गई हैं आगम में।
पूर्व गुणों की वृद्धि होय वह, आगे प्रतिमा भावन में॥
व्यसन सप्त का त्यागी जैनी, तथा रात्रि-भोजन त्यागी।
कंदमूल का त्यागी भी हो, जिन-पूजा का अनुरागी॥[1]

सर्वधर्म प्रधान जैन धर्म को सारगर्भित करने वाले जिन आगम में वर्णित विभिन्न धार्मिक विषयों में से एक विषय है- श्रावक की प्रतिमाएँ। आगम में श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ बताई गई हैं। इन प्रतिमाओं की भावना पूर्वक अर्थात् पूर्ण निष्ठा से पालन करने से गुणों की वृद्धि होती है। इसके पालन हेतु जैनी श्रावक का सप्त व्यसन का त्याग, रात्रि भोजन त्याग तथा कंदमूल का त्याग होता है एवं नित्य अनुरागता पूर्वक जिन पूजा का नियम होता है। इन नियमों का पूर्ण परायणता से पालन कर श्रावक प्रतिमाधारण हेतु योग्य होता है। अतः श्रावकजन को इन ग्यारह प्रतिमाओं को धारण कर निरतिचारिता और निर्मलता की भावना भाकर तथा पूर्ण निष्ठा से नियमों का पालन कर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिए।

सप्त व्यसन त्याग-

जुआ त्याग-कर, चोरी तजता, शिकार कभी न करता जो।
अण्डा, मछली आदि माँस को, पूर्ण रूप से तजता जो॥
बनती अशुद्ध सड़ी वस्तु से, नशावान तज मदिरा को।
बाल-विवाहित पर-तिय-सेवन, वेश्या-गमन तजे इनको॥[2]

जिन आगम में बताये गये सप्त-व्यसन, रुपयों-पैसों की शर्त लगाना अर्थात् जुआ, बिना पूछे किसी की वस्तु लेना अर्थात् चोरी, किसी भी जीव का शिकार तथा अण्डा, मछली आदि माँसाहार का पूर्ण रूप से त्याग करना चाहिए। इन व्यसनों को न त्यागने से अनन्त पाप का बंध होता है। साथ ही अशुद्ध, सड़ी-गली वस्तुओं से बनने वाली नशावान मदिरा (शराब) का भी त्याग करना चाहिए। परस्त्री सेवन एवं वेश्या गमन जैसे व्यसनों का भी त्याग करना चाहिए। इन सप्त व्यसनों का त्याग कर अनन्त पाप के बंध से बचना चाहिए।

राज्य दण्ड मिलता है-

सप्त व्यसन को छोड़ें न जो, महा पाप बंधता जानो।
जग में भारी निंदा होती, राज्य-दण्ड मिलता जानो॥
महापाप के भारीपन से, आतम दुर्गति पाती हैं।
तजते इनको, धर्म मिले वह, आतम सदा सुहाती है॥[3]

जो मनुष्य आगम में बताये गये सप्त-व्यसनों का त्याग नहीं करता है वह असंख्य पापों का बंध करता है। और

साथ ही उसकी प्रतिष्ठा और उसका सम्मान भी प्रभावित होता है। इन महापापों का त्याग न करने से वह व्यक्ति निंदनीय होता है और फलस्वरूप उसे राज्य-दण्ड मिलता है। इस महापापों के बंध वश उसकी आत्मा को दुर्गति मिलती है। अतः सप्त-व्यसनों को तजकर अपनी आत्मा को धर्म से जोड़ना चाहिए और अपना भव सुधारना चाहिए।

रात्रि भोजन त्याग-

सूर्य अस्त हो जीव असंख्य, रात्रि में पैदा होते।
गिरें भोज्य में अशुद्ध हो वह गहें जीव रोगी होते॥
महापाप वह हिंसा का हो, दुर्गतियों का कारण हो।
महा प्रमादी बने आलसी, जैनीपन न पालन हो॥[4]

जैसा कि जैन धर्म के शास्त्रों में भी बताया गया है कि सूर्य अस्त होने के पश्चात् रात्रि में असंख्य जीवों की उत्पत्ति होती है और जब वे जीव भोज्य पदार्थों में गिरते हैं तब वह भोजन अशुद्ध हो जाता है। इस प्रकार के भोजन को ग्रहण करने से शरीर में कई प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है और हिंसा जैसे महापाप का बंध होता है जो दुर्गति का कारण बनता है। निशिभोजन से मनुष्य प्रमादी, आलसी बनता है और उसको जैनी कुल में जन्म लेना निरर्थक सिद्ध होता है।

रात्रि भोजन-त्याग की महिमा-

दाल-भात वा रोटी आदिक, अन्नाहार कहा जाता।
पीने वाला रस आदिक वह, पेयाहार गिना जाता॥
लड्डू आदि खाद्य कहा अरु, रबड़ी आदिक लेह्य कहा।
निशि में छोड़े एक वर्ष में, षड् मासिक उपवास कहा॥[5]

आगम में बताया गया कि मूल रूप से चार प्रकार के अन्न जल होते हैं। जिनमें दाल भात तथा रोटी आदि जो अन्न आहार कहा जाता है और विभिन्न प्रकार के रस अर्थात् पीने वाले पदार्थों को पेयाहार कहा जाता है। लड्डू आदि खाद्य पदार्थों को खाद्य आहार तथा रबड़ी आदि को लेह्याहार कहा जाता है। इन चारों प्रकार के अन्न जल का रात्रि में त्याग करने से एक वर्ष में छः माह के उपवास का फल मिलता है।

कंदमूल त्याग-

आलू, मूली, अदरक, गाजर, प्याज, लहसुन, घुइयाँ कंद।
सकरकंद, सूरण अनन्त उन-जीवों के तन हों हि कंद॥
अनंतकायिक जमीकंद ये, अतः तामसिक होते हैं।
इनके सेवन महापाप से, धर्म निरर्थक होते हैं॥[6]

जैन धर्म का जीव-विज्ञान खूब विशाल है। जिसमें आलू, मूली, अदरक, गाजर, प्याज, लहसुन, शकरकंद, सूरण इत्यादि कंदमूल अनंतकायिक जीव कहे हैं। अनंतकायिक का अर्थ होता है एक ही शरीर में अनंत जीवों का वास जिसमें होता है। मात्र सुई की नोक जैसे आलू आदि के भाग में अनंत जीव होते हैं। ऐसे

कंदमूलों को खाने का अर्थ है अनंत जीवों की हिंसा करना। अतः मात्र जीभ के स्वाद के लिये अनंत जीवों की हिंसा जैसे महापाप से बचना चाहिए तथा धर्म की सार्थकता को सिद्ध करना चाहिए।

पञ्च अभक्ष वर्णन / त्रसघात-

आगम में त्रसघात तथा वे, अभक्ष हैं बहुघात कहे।
प्रमादवर्धक अरु अनिष्ट वा, अनुपसेव्य ये पाँच रहे॥
त्रस अनंत वे जीते मरते- जिनमें, वे मधु मांस रहे।
करुणाधारी छोड़े हिंसा, इनमें ना है आश रहे॥[7]

आगम में बताया गया है कि त्रस घात अर्थात् जिस पदार्थ को खाने से त्रस जीवों का घात (हिंसा) होता है तथा बहुघात अर्थात् जिन पदार्थों के सेवन से अनंत स्थावर जीवों का घात होता है तथा जिनको खाने से प्रमाद या नशा-विकार बढ़ता है तथा जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी हमारे लिए हितकर न हो ऐसे अनिष्ट तथा जो पदार्थ सेवन योग्य न हो ऐसे अनुपसेव्य आदि बताये पञ्च अभक्ष्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

अनन्त त्रस जीव जिन पदार्थों में जन्म लेते हैं तथा मरते हैं ऐसे अभक्ष्य मधु (शहद) तथा मांस आदि का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार के सेवन से अनेक जीवों की हिंसा होती है। अतः मनुष्य को करुणा धारण कर, इस प्रकार के जीवों की रक्षा करना चाहिए और अभक्ष्य का त्याग करना चाहिए।

बहुघात-

मूली गीला अदरक आदिक, जमीकंद मक्खन होते।
नीम केतकी आदिक पुष्पों- में बहु-जीव सदा होते॥
इसी तरह से अन्य वस्तुएँ, जहाँ अल्प फल मिलता हो।
बहुत जीव हैं मरते उनमें, वहाँ धर्म निष्फलता हो॥[8]

मूली अदरक आदि जमीकंद, जो पृथ्वी के अंदर विकसित होती हैं ऐसी वनस्पतियों तथा नीम, केतकी इत्यादि पुष्पों में बहु जीवों अर्थात् स्थावर जीवों का वास रहता है। इसी प्रकार की सभी वस्तुएँ जिनको खाने से असंख्य जीवों की हिंसा होती है उनका सेवन करने से धर्म की निष्फलता सिद्ध होती है।

प्रमादवर्धक व अनिष्ट-

प्राणी हिंसक मदिरा पीकर, विवेक तजता पूर्ण जहाँ।
भाता, भार्या भेद लखे ना, प्रमाद, पापी पूर्ण वहाँ॥
प्रासुक होकर भी जो चीजे, उदरशूल आदिक देवें।
करें हानि वे अनिष्ट होतीं, रुचिकर तो भी ना सेवें॥[9]

हिंसक पदार्थों से बनी मदिरा पीकर, मनुष्य अपना विवेक खो देता है। उसे इस अवस्था में माता-बहन आदि में भेद समझ नहीं आता है। वह मनुष्य प्रमादी आलसी तथा पूर्ण रूप से पापों का बंध करता है। ऐसे पदार्थ जो प्रासुक करने पर भी हमारे शरीर के लिये घातक हैं या हितकर नहीं हैं जैसे बुखार से पीड़ित शरीर के लिये हलवा एवं जुकाम से पीड़ित शरीर के लिये ठण्डी वस्तुएँ आदि हितकर नहीं है। इन का सेवन पूर्ण रूप से त्यागना

चाहिए। यदि पदार्थ मनपसंद हो परन्तु शरीर हेतु हितकारी न हो तो भी सेवन नहीं करना चाहिए।

अनुपसेव्य-

इसी तरह गोमूत्र, पान का उगाल लार मूत्र जो हैं।
दूध ऊँटनी का, पुरीष अरु, शंख-चूर्ण श्लेष्म को हैं॥
तजते, हों वे प्रासुक तो भी, क्योंकि अनुपसेव्य जानो।
एवं विकृत चित्त, वस्त्र, आ-भरण सेव्य ना पहचानो॥[10]

जो पदार्थ सेवन योग्य न हो जैसे गोमूत्र, पान का उगाल, लार, मूत्र, ऊँटनी का दूध, शंख-चूर्ण आदि को त्यागना चाहिए। ऐसे पदार्थ प्रासुक करने पर भी अनुपसेव्य ही रहते हैं। अतः ऐसे पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। साथ ही अनुचित चित्र, वस्त्र, आभूषण आदि जो अधिक राग-द्वेष मोह आदि की उत्पत्ति का कारण बनते हैं, ऐसे अनुपसेव्य का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

बाईस अभक्ष्य त्याग-

दहीबड़ा, निशि भोजन, बैंगन, मद्य, माँस, मधु को छोड़ें।
कंदमूल, नवनीत अजान व, तुच्छ फलों से मुख मोड़ें॥
बर्फ, अचार वा विकृत भोजन, पंच उदम्बर पूर्ण तजें।
विष, बहुबीजी, मिट्टी छोड़ें, बेर तजें, सुख पुण्य भजें॥[11]

शास्त्रों में बताये गये बाईस अभक्ष्य पदार्थ-दहीबड़ा जो द्विदल से बनता है, रात्रि भोजन जिसमें हिंसा के महापाप का बंध होता है। बैंगन, अशुद्ध पदार्थों से बनने वाली शराब तथा जीवों की हिंसा से प्राप्त मांस, त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होने वाला शहद, पृथ्वी के अंदर विकसित होने वाले कंदमूल पदार्थ, ऐसा फल जो हमारे लिये अजान हो, तुच्छ हो आदि अभक्ष्य पदार्थों से मुँह मोड़ना चाहिए अर्थात् इनके सेवन से बचना चाहिए। बर्फ (अनछने व अप्रासुक जल से बने), अचार तथा खराब भोजन, पाँच उदम्बर फल- बड़, पीपल, पाकर, ऊमर तथा कठूमर फल, विष (जहर) बहुबीजी पदार्थ, मिट्टी, बेर का फल आदि अभक्ष्यों का भी पूर्ण रूप से त्याग करना चाहिए तथा पुण्य का बंध कर जीवन सुखद बनाना चाहिए एवं अपना भव सुधारना चाहिए।

आहारादिक की शुद्धि व अहिंसा पालन-

इसी तरह वे मर्यादा के, बाहर सब आहार तजें।
जिनमें उपजे जीव असंख्य, त्रस-हिंसा तज पुण्य भजें॥
बिना छना जल कभी न पीवें, असंख्य जीव घात जानो।
नदी, कुआँ उस मूल स्रोत में, जीवानी करना जानो॥[12]

आगम में बताई गई प्रतिमाओं को धारण करने वाला श्रावक, बताये गये सभी अभक्ष्य आदि जो मर्यादा से बाहर हैं उनका त्याग करता है। ऐसे पदार्थ जिनमें असंख्य जीवों की उत्पत्ति होती है, त्रस जीवों का घात होता है आदि को तजकर पुण्य अर्जन करता है। जैसा कि हम सभी जानते हैं, एक बूंद अनछने पानी में असंख्यात जीव होते हैं तो शास्त्रों में कहे अनुसार बिना छना जल कभी नहीं पीना चाहिए। इससे असंख्यात जीवों की हिंसा होती

है और महापाप का बंध होता है। मूल रूप से जल प्रदान करने वाले जलस्रोत्र नदी, कुँआ आदि में से जीवानी द्वारा जल छानने की प्रक्रिया का ज्ञान होना आवश्यक है। जिससे कि असंख्यात जीवों की हिंसा न हो और धर्म भ्रष्ट न हो।

जल-गालन विधि-

किसी पात्र अरु रस्सी द्वारा, जल निकाल के छानें वे।
मोटा कपड़ा दुहरा होता, धीरे-धीरे छानें वे॥
बिना छना जल गिरे न नीचे, योग्य पात्र हो ध्यान रहे।
जीवानी को नीर सतह पर, धीरे छोड़ें ज्ञान रहे॥[13]

जल प्राप्ति के मूल स्रोत नदी, कुँआ आदि द्वारा जल को रस्सी की सहायता से पात्र में भरना चाहिए। तत्पश्चात् जल को जीवानी करना चाहिए अर्थात् मोटा दुहरा कपड़ा (गलना) की सहायता से छानकर धीरे-धीरे दूसरे पात्र में डालना चाहिए। जल का पात्र पूर्ण रूप से साबुत होना चाहिए। जल छानते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि एक बूंद भी जल जमीन पर नहीं गिरना चाहिए। एक बूंद जल में असंख्यात जीव होते हैं। यदि जल जमीन पर गिरता है तो असंख्यात जीव घात का पाप लगता है। इसलिए सदैव सावधानीपूर्वक जल को सुयोग्य पात्र में छानना चाहिए। जल को जीवानी (गलने) द्वारा सावधानी पूर्वक छानने के उपरान्त जीवानी को जलाशय में धीरे-धीरे नीर सतह पर छोड़ना चाहिए। इससे जल व्यर्थ ही जमीन पर नहीं गिरेगा। इस प्रकार जल को बताई गयी विधि के अनुसार सावधानी पूर्वक पूर्ण सतर्कता से छानना चाहिए और जल को व्यर्थ न कर जीव घात से बचना चाहिए।

अहिंसा की व्यापकता-

श्रावक सदा अहिंसाणुव्रत, जीवन में पालन करते।
खान सु-पान हो या स्नान हो, या कपड़ा धोवन करते॥
अभक्ष्य या बाजार बनी हो, वस्तु सेवते नहीं कदा।
रेशम, चमड़ा आदिक हिंसक-सभी वस्तुएँ त्याग सदा॥[14]

प्रतिमाधारण करने वाला श्रावक सदा के लिये जीवन पर्यन्त अहिंसाणुव्रत का पालन करता है। अहिंसाणुव्रत अर्थात् किसी भी जीव को कभी भी न मारना न काटना और न ही किसी भी रूप से सताना आदि अहिंसा का पालन करने का व्रत धारण करना। चाहे खाने-पीने में या स्नान आदि क्रियाओं में या कपड़े धोने आदि में श्रावक सदैव अहिंसा का पालन करता है। साथ ही बताये गये सभी अभक्ष्य पदार्थों या बाजार की बनी सभी प्रकार की खाने-पीने की वस्तुएँ आदि का कभी भी सेवन नहीं करता है। प्रतिमा धारण करने वाला श्रावक रेशम, चमड़ा आदि सभी हिंसा वस्तुओं का पूर्ण रूप से जीवन पर्यन्त त्याग करता है। अनन्त पाप का भागीदार न बनकर, अपना पुण्य प्रबल करता है तथा निरन्तर धर्म-पथ पर नियमों का पालन करते हुये अग्रसर होता है।

निर्माल्य व धर्म द्रव्य का त्याग-

देवादिक की पूजा में जो, अर्पित वस्तु न गहते हैं।
धर्मक्षेत्र रु धर्म द्रव्य हि, मेरा यह ना कहते हैं॥
तथा आयतन से जीवन में, धन्धा-पानी ना करते।
अपनी शक्ति दान करें व, ईर्ष्या-भावन ना रखते॥[15]

प्रतिमाओं को धारण करने वाला श्रावक, देव-शास्त्र-गुरु आदि की पूजा में अर्पित की गई समस्त प्रकार वस्तुओं का कभी भी ग्रहण नहीं करता है। चाहे वह धर्म क्षेत्र हो या धर्म द्रव्य, समस्त निर्माल्य वस्तुओं को कभी भी अपना नहीं कहता है अर्थात् सार्वजनिक वस्तु पर अपना हक नहीं जमाता। वह किसी भी रूप में किसी भी प्रकार से इनका निजी गृह हेतु उपयोग नहीं करता है तथा ना ही वह किसी भी धर्म क्षेत्र आदि से धन अर्जित करने हेतु धन्धा-पानी करता है। वह किसी भी निर्माल्य वस्तु का प्रयोग स्वयं के स्वार्थ में नहीं करता है। बल्कि वह अपनी शक्ति अनुसार बिना किसी ईर्ष्या के भाव से अपने पूर्ण मन से यथायोग्य दान करता है। प्रतिमाधारी श्रावक का निर्माल्य व धर्मद्रव्य आदि का आजीवन त्याग होता है।

धर्म-कार्य के योग्य बनें-

ऊपर कहे गये नियमों का, जो उत्तम पालन करते।
गुरु-सेवा व जिनाभिषेक की, सुयोग्यता धारण करते॥
कल्याणक वा विशेष पूजा-में इन्द्रादिक बनें सदा।
आगे प्रतिमादिक का धारण-होय चले शिव-राह सदा॥[16]

प्रस्तुत समस्त पद्यों में कहे गये नियम सप्त व्यसन त्याग, रात्रिभोजन त्याग, कंदमूल तथा पंच अभक्ष्य का त्याग, बाईस अभक्ष्य का त्याग, निर्माल्य व धर्मद्रव्य का त्याग, तथा अहिंसाणुव्रत का पालन आदि समस्त नियमों का पूर्ण निष्ठा से उत्तम पालन करने से श्रावक धर्म-कार्य हेतु योग्य बनता है। श्रावक सदैव सभी प्रकार की गुरु-सेवा, जिनाभिषेक आदि क्रियाओं में सम्मिलित होकर धार्मिक कार्य के लिए सुयोग्यता धारण करता है। श्रावक यदा-कदा आयोजित होने वाले धार्मिक कार्यों जैसे पंच-कल्याणक विधान, विशेष पूजा आदि में इन्द्र आदिक पदों के लिये दान कर इन्द्र की भूमिका निभाता है और इस प्रकार श्रावक प्रतिमा धारण के नियमों का पालन करते हुये प्रतिमाधारी बन निरन्तर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर रहता है और धर्म लाभ ले, पुण्यार्जन करता है।

श्रावक के तीन भेद-

पालन आठों मूलगुणों का, करता श्रावक पाक्षिक है।
प्रतिमा ग्यारह का पालन जब, करता श्रावक नैष्ठिक है॥
श्रावक साधक कहलाता जो, सल्लेखन धारण करता।
धन्य रहे ये तीनों श्रावक, मिलती शिवसुख सुन्दरता॥[17]

आगम में श्रावक के तीन भेद बताये गये हैं। जो श्रावक जिनआगम में बताये गये अष्ट मूलगुणों का पूर्ण

परायणता से पालन करता है, वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है। जो श्रावक-कथित ग्यारह प्रतिमाओं का निष्ठापूर्वक पालन करता है वह नैष्ठिक श्रावक कहा जाता है तथा जो श्रावक जिनागम में वर्णित सल्लेखना को विधिपूर्वक साधता है, वह साधक श्रावक कहलाता है। इन तीनों ही प्रकार के श्रावकजन जो कथित नियमों का पालन कर अपना जीवन सार्थक करते हैं। ऐसे श्रावकों को मोक्ष की सुन्दरता और सुख की प्राप्ति होती हैं।

श्रावकों के अष्ट मूलगुण-

पञ्चाणुव्रत नित वे पालें, तथा मध-मधु-मांस तजें।
यही रहे हैं अष्ट मूलगुण, जिनसे सद्गति शीघ्र भजें॥
बड़, पीपल, ऊमर भी जो हैं, तथा कठूमर पाकर वे।
त्यागें ऐसे पंच अदुम्बर, जीव असंख्य बचाकर वे॥[18]

जैनी श्रावक के अष्ट मूलगुण, आगम में बतलाये गये हैं। पञ्चाणुव्रत का पालन तथा मद्य, मांस एवं मधु का त्याग, इस प्रकार के अष्ट मूलगुणों का पालन कर श्रावक सद्गति प्राप्त करता है। साथ ही, असंख्यात जीवों का घात जिन्हें खाने से होता है जैसे बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर आदि पंच उदम्बर फल का त्याग कर श्रावक जीव रक्षा कर पुण्य अर्जन करता है। और असंख्यात जीवों की रक्षा करता है।

व्रत-धारण करने की योग्यता-

जिन जीवों को नहीं हुआ है, किसी आयु का बंध वहाँ।
या वैमानिक मात्र सुगति का, हुआ आयु है बंध वहाँ॥
वे भव्य हि अणुव्रत, मुनिव्रत-को जीवन में पा सकते।
दुर्गति बद्ध व अभव्य को ना-ऐसे सुव्रत मिल सकते॥[19]

व्रतों को धारण करने के लिये भी कुछ योग्यताएँ सुनिश्चित हैं। जिन जीवों को किसी भी आयु कर्म का बंध नहीं हुआ है या जीव को मात्र वैमानिक सुगति का आयु बंध है, वे ही जीव; व्रत धारण करने के योग्य हैं। ये ही जीव अणुव्रत, मुनिव्रत आदि का जीवन में पालन कर सकते हैं। जिन जीवों को मिथ्यात्व पापों के कारण दुर्गति का बंध हुआ है या अभव्य जीव आदि व्रत धारण करने योग्य नहीं है। उन जीवों को सुव्रत नहीं मिल सकते।

★★★

आगम-प्रमाण-

1. तीर्थोदय काव्य; अचार्य श्री आर्जवसागर जी, पद्य-310
2. वही; पद्य-311
3. वही; पद्य-312
4. वही; पद्य-313
5. वही; पद्य-314
6. वही; पद्य-315
7. वही; पद्य-316
8. वही; पद्य-317
9. वही; पद्य-318
10. वही; पद्य-319
11. वही; पद्य-320
12. वही; पद्य-321
13. वही; पद्य-322
14. वही; पद्य-323
15. वही; पद्य-324
16. वही; पद्य-325
17. वही; पद्य-326
18. वही; पद्य-327
19. वही; पद्य-328

तीर्थोदय काव्य में पिच्छिका का महत्वपूर्ण उपयोग

-श्री देवन (दास) जैन, बी.ई., बैंगलोर

भगवान महावीर के शासन काल में आर्ष परम्परा के कई आचार्यों ने जैसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्राचार्य पूज्यपाद आचार्य, नेमिचन्द्राचार्य, श्री अकलंक देव आदि आचार्य दक्षिण के होने के बाद भी संस्कृत, प्राकृत में रचनायें कर आगम ज्ञान बढ़ाया। लेकिन एक सूर्य ऐसा उदित हुआ जिसने उत्तर भारत के होने के बाद भी दक्षिण भारत में लुप्त धर्म को जागृत कर जन-जन को सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर सन्मार्ग दर्शाकर एक इतिहास रचा है। इसका पूरा का पूरा श्रेय सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक सुयोग्य शिष्य अध्यात्म योगी आचार्य गुरुवर श्री आर्जवसागर जी महाराज को जाता है। इन्होंने तमिल भाषा में उत्कृष्ट रूप से अधिकार प्राप्त करके उसी भाषा में धर्मोपदेश के माध्यम से हमारे जैसे अज्ञानी प्राणियों के लिए धर्म का मार्ग और धर्म का मर्म समझाया है।

तीर्थोदय काव्य; गुरुवर आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज की एक अनुपम, सरल, सुष्ठु कृति है जिसे उनके द्वारा तमिल देश में लिखा गया है यह हमारे लिए गर्व का विषय है। उस काव्य में पिच्छिका के महत्वपूर्ण उपयोग पर आलेख लिखने का सौभाग्य गुरुवर की असीम कृपा को दर्शाता है।

पिच्छिका के महत्वपूर्ण उपयोग के बारे में गुरुवर ने तीर्थोदय काव्य में कहा है कि-

मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, पिच्छिका के रहे सुयोग्य।
वाहन, धन, पैसा वाले वे, पिच्छिका के रहे अयोग्य॥
वाहन, गद्दी, शौचालय में, ना पिच्छिका है उपयोग।
जीव बचाने साधु जनों को, सदा पिच्छि का सद्उपयोग॥[1]

दिगम्बर साधुओं की पहचान चिह्न पिच्छिका है।

- **पिच्छिका में मयूर का पंख ही क्यों लगाया जाता है?**

क्योंकि मयूर ही अकेला एक ऐसा प्राणी है जो काम क्रीड़ा नहीं करता है। जब मोर प्रसन्न होता है तो वह अपने पंखों को फैलाकर नाचता है और जब नाचते नाचते मस्त हो जाता है तो उसकी आँखों से आँसू गिरते हैं और मोरनी इन आँसू को पीती है और इससे ही वह गर्भ धारण करती है। मोर में कहीं भी वासना का लेश मात्र भी नजर नहीं आता।

- **मयूर के पंख में कितने गुण होते हैं?**

मयूर पंख में पाँच गुण होते हैं- धूलि को ग्रहण नहीं करता पसीने से मलिन नहीं होता, मृदुता, सुकुमारता और लघुता। मयूर पंख आँखों में भी चला जाये तो भी आँखों में पानी नहीं आता इतना मुलायम है और ये पंख औषधियों में भी काम आते हैं।

- **क्या अहिंसक जैनियों को ऐसे एक पक्षी के पंख उपयोग करने में हिंसा का दोष नहीं लगता है?**

नहीं लगता है; क्योंकि मोर का पंख निकाला नहीं जाता है, ना ही उसके लिए पीड़ा पहुँचायी जाती है बल्कि मयूर

स्वतः ही धीरे-धीरे कार्तिक मास में (दशहरा के बाद) अपने पंखों को छोड़ देते हैं, सब झड़ जाते हैं। फिर पुनः नये पंख उसके लिए आते हैं। उन झड़े हुए पंखों को श्रावकगण एकत्रित कर लेते हैं। पश्चात् उन पंखों को सुव्यवस्थित कर पिच्छिका बनाई जाती है। इसलिए यह एक अहिंसक उपकरण है। इसमें अंश मात्र भी हिंसा का दोष नहीं है। क्योंकि मयूर के उड़ने के पंख अलग होते हैं, पिच्छिका वाले पंख तो शोभा के लिए या मुनियों की पिच्छिका के निमित्त ही आते हैं ऐसा समझो।

- **पिच्छिका का उपयोग क्या है?**

दीक्षा के समय आचार्य इस संयम के उपकरण रूप पिच्छिका को जीव दया पालन हेतु शिष्यों को देते हैं। यह संयमोपकरण सूक्ष्म जीवों को बचाने प्रतिलेखन (शोधन) के कार्य में उपयोग किया जाता है।

ईर्यापथ से गमन करने में यदि त्रस जीव बहुत हैं तो उन्हें पिच्छि से दूर किया जाता है। क्षेत्र बदलने पर जैसे छाया से धूप में या धूप से छाया में जाते समय साधु अपने सर्वांग को पिच्छि से परिमार्जित करके ठण्डे गर्म वातावरण के जीवों की रक्षा करते हैं। क्योंकि धूप के जीव छाया में, छाया के जीव धूप में जाने पर उनकी विराधना हो सकती है। इसलिए तन को परिमार्जित करना आवश्यक है। इसी प्रकार पुस्तक, कमण्डलु आदि धर्म-उपकरण के ग्रहण करने में, रखने में, मलमूत्रादि विसर्जन के स्थान में, खड़े होने में, बैठने में, सोने में, करवट बदलने में, हाथ पैर आदि फैलाने में शरीर आदि के स्पर्श करने में, अन्य भी किन्हीं कार्यों में साधु सावधान रहते हुए अपनी पिच्छिका से परिमार्जन कर त्रस आदि जीवों की रक्षा करते हैं।

जो दो इन्द्रिय आदि सूक्ष्म जीव हैं वे चर्म चक्षु से नहीं दिखते हैं। इसलिए जीवदया, अहिंसा पालन हेतु पिच्छिका धारण साधुओं को आवश्यक है।

जो मुनि या साधु अपने पास पिच्छि नहीं रखते हैं, सभी क्रियाओं में पिच्छि का उपयोग नहीं करते हैं वे जीव हिंसा से नहीं बच सकते हैं। कोई साधु बिना पिच्छि के सात कदम गमन करे तो एक कायोत्सर्ग से शुद्ध होता है। तथा आगे दूना-दूना प्रायश्चित्त होता है। ऐसा जिनागम में कहा है।

साधु सामायिक, वंदना आदि के समय, भगवान को नमस्कार करते समय और गुरुओं को नमस्कार करते समय दोनों हाथों में पिच्छि लेकर अंजुलि जोड़कर अर्थात् पिच्छि सहित अञ्जुलि जोड़कर वंदना आदि करते हैं। इस प्रकार यह पिच्छिका का उपयोग अनिवार्य रूप से साधुओं को उपयोग करना चाहिए। अन्यथा वे साधु नहीं कहलायेंगे।

- **पिच्छिका के योग्य कौन होते हैं?**

पिच्छिका के योग्य मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक होते हैं। ये सभी गृहत्यागी, वाहन, धनादि परिग्रह से दूर रहते हैं। दिन में एक बार उत्तम श्रावक के घर आगम विधि अनुसार आहार ग्रहण करते हैं और केशलोंच भी करते हैं।

1.मुनि- नग्न दिगम्बर रहते हैं, खड़े होकर अपने हाथों में आहार ग्रहण करते हैं। 28 मूलगुणों का पालन करते हैं, पिच्छि कमण्डलु रखते हैं, वे मुनि कहलाते हैं। इनको नमोस्तु कहकर नमस्कार करना चाहिए।

2. आर्यिका: जो पिच्छि, कमण्डलु रखती हैं, सिर्फ एक साड़ी पहनती हैं, उपचार में महाव्रतों का पालन करती हैं और बैठकर अपने हाथों से आहार ग्रहण करती हैं, वे आर्यिका कहलाती हैं। इनको वंदामि कहकर नमस्कार

करना चाहिए।

3. एलक : जो केवल एक लंगोट मात्र पहनते हैं, पिच्छि, कमण्डलु रखते हैं बैठकर हाथ में आहार ग्रहण करते हैं, ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं वे एलक कहलाते हैं। इनको इच्छामि कहकर नमस्कार करना चाहिए।

4. (1) क्षुल्लक : जो केवल लंगोट के साथ छोटा दुपट्टा रखते हैं। पिच्छि या मृदु कपड़ा और कमण्डलु रखते हैं, बैठकर दिन में एक बार कटोरे में आहार लेते हैं ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं वे क्षुल्लक कहलाते हैं। इनको इच्छामि कहकर नमस्कार करना चाहिए।

(2) क्षुल्लिका: जो क्षुल्लक की तरह सभी क्रियायें करती हैं। एक साड़ी और एक दुपट्टा रखती हैं। इनको भी इच्छामि कहना चाहिए। इस तरह पिच्छिका के योग्य ये चार ही लिंग(वेष) धारी होते हैं। कुन्दकुन्द आचार्य ने भी जैन धर्म में लिंग के बारे में कहा है कि-

एगं जिणस्य रूवं, बीयं उक्कि ट्ठसावयाणं तु।
अवरद्दिठयाण तइयं, चउत्थपुण लिंग दंसणं णत्थि॥ 18॥[2]

अर्थ- (एगं जिणस्य रूवं) एक जिनेन्द्र भगवान का रूप अर्थात् निर्ग्रन्थ रूप नग्न में **(बीयं)** दूसरा **(उक्कि ट्ठसावयाणं)** उत्कृष्ट श्रावकों का अर्थात् ऐलक, क्षुल्लक का **(तु)** और **(तइयं)** तृतीय **(अवरट्ठियाण)** जघन्य स्थान में स्थित आर्यिका, क्षुल्लिका का लिंग अर्थात् भेष है **(चउत्थ पुणलिंग)** इसके अलावा चौथा कोई लिंग-भेष **(दंसणं णत्थि)** जिन दर्शन या जिनशासन में नहीं है।

• पिच्छिका के अयोग्य कौन हैं?

जो वाहन, धन, पैसा आदि परिग्रह से घिरे हैं। मठादि में रहते हैं। शौचालय का प्रयोग करते हैं। दिन में कई बार भोजन करते हैं। शुद्ध भोजन का नियम नहीं है। ऐसे लोग पिच्छिका के योग्य नहीं हैं। सूक्ष्म जीवों को बचाने के लिए यह पिच्छिका उपयोग किया जाता है और जो आरम्भ हिंसा के कार्य करते हैं। ए.सी., कार में घूमते हैं, खड़ाऊँ, पहनते हैं, खेती करते हैं, सोना, चाँदी आदि से सहित हैं, बाल कटिंग करवाते हैं और अपने हाथ में पिच्छि रखते हैं। उन्होंने पिच्छि का उपयोग कहाँ किया। वे तो अपने आपको पुजवाने के लिए पिच्छिका रखते हैं। साधु की चर्या तो पालन करते नहीं हैं और साधुत्वता बताकर अपने आपको पुजवाते हैं। ऐसे लोग जिनागम के विरुद्ध वेष धारण कर जिनमत का उलंघन कर रहे हैं। सच्चे सम्यग्दृष्टि श्रावक को ऐसे लोगों से बहुत दूर रहना चाहिए।

इस प्रकार गुरुदेव ने पिच्छिका के महत्व को एक ही पद्य में अमूल्य शब्दों के माध्यम से वर्णित कर दिया है। हे गुरुवर! आप ऐसे ही अनेक अद्‌भुत रचनाओं के माध्यम से जगत् के अज्ञ जीवों को सन्मार्ग दर्शाते रहें और हम जैसे मूढ़ प्राणियों को सम्यग्दर्शन ज्ञानादि का दीपक देकर जो उद्धार उसके लिए मैं भवों-भवों जब तक मोक्ष न मिले तब तक आपका दास बनकर आपके चरणों की सेवा करता रहूँ तो किया है भी वह अनन्त उपकारों को चुका नहीं पाऊँगा। ऐसे परम उपकारी गुरुवर शतायु-पूर्णायु जीवन्त रहें। इसी मंगल मय भावनाओं के साथ गुरुवर के चरणों में मनसा, वचसा, कर्मणा अनुनय बारम्बार-बारम्बार नमोस्तु निवेदित करता हूँ।

संदर्भ ग्रंथ सूचि-

1. तीर्थोदय काव्य; आचार्यश्री आर्जवसागर जी, पृष्ठ 16, पद्य-54
2. दर्शन पाहुड़; आचार्य कुंदकुंद देव, गाथा-18

तीर्थोदय काव्य में सम्यग्दृष्टि आत्मा के प्रशमादिक चार गुणों का सम्यक् विश्लेषण

-आर्यिका रत्न 105 प्रतिभामति जी

लोक में जैन धर्म एक महान प्राचीन धर्म माना जाता है उस जैन धर्म की आर्ष परंपरा में अनेकानेक आचार्य मुनियों ने अपनी तपस्या के अलावा समय निकालकर अनेकानेक महाकाव्यों की एवं शास्त्रों की रचना की है जैसे कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्राचार्य, पूज्यपाद आचार्य आदि परंपरा में महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज संस्कृत के महाप्रकाण्ड विद्वान माने जाते हैं। उन्होंने भी सुदर्शनोदय, वीरोदय, दयोदय आदि अनेक महाकाव्यों की रचना की है और उनके ही शिष्य संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने भी महाकाव्य मूकमाटी आदि की रचना की है और उनसे ही दीक्षित विद्यारत्न, अध्यात्म योगी, वात्सल्यमूर्ति, परम पूज्य गुरुवर आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ने भी एक अमूल्य अनुपम आगम सारभूत अध्यात्म रसस्वाद से पूर्ण स्वरूप एक महाकाव्य की रचना की है; उसका नाम है ''तीर्थोदय काव्य''। यह कृति षोडसकारण व्रत की तपस्या का स्रोत है इसमें सोलह भावनाओं का वर्णन है। उसमें प्रथम भावना रूप दर्शन विशुद्धि भावना है। उस सम्यग्दर्शन से जो विशुद्ध हो जाता है उस सम्यग्दृष्टि के चार गुण होते हैं- प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य।

''प्रशम संवेग दयास्तिक्यादि लक्षणम्''

इन्हीं चार गुणों का वर्णन हम आपके सामने प्रस्तुत करने जा रहे हैं- पूज्य आचार्य महाराज ने तीर्थोदय काव्य में इन चार गुणों का सुंदर विवेचन करते हुये कहा है कि-

''क्रोधादिक में क्षमा भाव हो, वहाँ प्रशम-गुण माना है।
भव-बंधन से भय का होना, सवेगी बन जाना है॥
दुखी जीव में दया-भाव हो, अनुकंपा कहलाती है।
जिन-वचनों में दृढ़ता होवे, आस्तिकता आ जाती है॥''[1]

क्रोधादि में क्षमा भाव होना पहला प्रशम गुण है। भव या संसार से भय होना संवेग नामक द्वितीय गुण है। दुखी प्राणियों पर दया भाव होना तृतीय अनुकंपा गुण है और जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर अडिग श्रद्धान होना आस्तिकता नामक चौथा गुण है।

पहला गुण- प्रशम- क्रोध किसे कहते हैं? तो राजवार्तिक में कहा है कि **''स्वपरोपघातनिग्रहाहित क्रौर्य परिणामोऽमर्षः क्रोधः।''**

अर्थात् अपने और पर के उपघात या अनुपकार आदि करने के क्रूर परिणाम क्रोध है। क्रोध को गुस्सा, रोष आदि अनेक प्रकार से जाना जाता है। क्रोध चार कषायों में से एक कषाय है। आत्मा के भीतरी कलुष परिणाम को कषाय कहते हैं। इसके चार भेद हैं- अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान क्रोध और संज्वलन क्रोध। यह किस प्रकार का है बताते हुये कहते हैं।

'' स च चतुः प्रकारः पर्वत-पृथ्वी-बालुका-उदकराजित तुल्यः।''

वह पर्वत रेखा, पृथ्वी रेखा, धूलिरेखा और जलरेखा के समान चार प्रकार का है। यह भेद कषायों के तीव्र और मन्द भावों के कारण होता है। तीव्र व मन्द कषाय का लक्षण है, जो सभी से प्रिय वचन बोलता है। खोटे वचन बोलने पर भी दुर्जन को भी क्षमा करता है और सभी के गुणों को ग्रहण करता है यह सब मन्द कषायी के लक्षण हैं और जो अपनी प्रशंसा करता है, पूज्य पुरुषों भी दोष निकालने का स्वभाव रखता है और बहुत काल तब बैर धारण करता ईंट का जबाव पत्थर से देता है, ऐसे स्वभाव वाले तीव्र कषायी होते हैं इसलिए जब मिथ्यात्व रहता है तब तीव्र कषाय के कारण अनन्त भव तक अनुबन्धी रूप अनन्तानुबन्ध रूप कषाय से वह शिलालेखी के समान कठोर कर्मों का बंध कर लेता है और जो सम्यग्दृष्टि रहता है वह तीव्र क्रोध नहीं करता बल्कि क्रोधित व्यक्ति पर क्षमाभाव धारण करता है इसलिए इसका भव या संसार अनन्त नहीं होता।

उत्तम क्षमा का लक्षण बताते हुये वारसाणुवेक्खा में कहा है कि-

''कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचिवि कोहं तस्स खमा होदी धम्मोत्ति ॥71॥[2]

अर्थ- क्रोध के उत्पन्न होने के साक्षात् बाहरी कारण मिलने पर भी जो थोड़ा क्रोध नहीं करता उसके उत्तम क्षमा धर्म होता है। अपना अपराध करने वालों का ही प्रतिकार करने में समर्थ रहते हुये भी जो पुरुष अपने उन अपराधियों के प्रति उत्तम क्षमा धारण करता है। उसको क्षमा रूपी अमृत का समीचीन तथा सेवन करने वाले साधु जन पापों को नष्ट देने वाला समझते हैं।

उत्तम क्षमा के पालनार्थ हम किस प्रकार की भावना भायें?

उत्तम क्षमा के पालनार्थ हम ऐसी भावना भायें कि मैंने इसका अपमान किया नहीं तो भी यह पुरुष मेरे पर क्रोध कर रहा है, गाली दे रहा है, मैं निरपराधी हूँ ऐसा विचार कर उसके ऊपर क्षमा करनी चाहिए। इसने मेरे ऊपर क्रोध किया तो मेरी उसमें कुछ भी हानि नहीं है, अथवा क्रोध करने पर दया करना चाहिए, क्योंकि यह दीन पुरुष असत्य दोषों का कथन करके व्यर्थ ही पाप का अर्जन कर रहा है। यह पाप उसे अनेक दुःखों को देने वाला होगा। इसने मेरे को गाली ही तो दी है, पीटा तो नहीं है अर्थात् न मारना यह इसमें महान गुण है। इसने गाली दी है परंतु गाली देने से मेरा तो कुछ भी नुकसान नहीं हुआ अतः इसके ऊपर क्षमा करनी ही मेरे लिए उचित है ऐसा विचार कर क्षमा करना चाहिए। इसने मेरे को केवल ताड़न ही किया है, मेरा वध तो नहीं किया। वध भी करने से इसने मेरा धर्म से नष्ट नहीं किया। यह इसने मेरा उपकार किया ऐसा मान कर क्षमा ही करना योग्य है। ऋण चुकाने के समय जिस प्रकार साहूकार का धन अवश्य वापस देना चाहिए उसी प्रकार मैंने पूर्व जन्म में पापार्जन किया था। अब यह मेरे को दुःख दे रहा है यह योग्य ही है। यदि मैं इसे शान्त भाव से सहन करूँगा तो पाप ऋण से रहित होकर सुखी हो जाऊँगा ऐसा विचार कर रोष नहीं करना चाहिए और क्रोधित व्यक्ति को शान्त करने का एक उत्तम उपाय है- मौन। मौन रहने से प्रतिउत्तर न मिलने पर सामने वाला, व्यक्ति अपने आप शान्त हो जाता है। इसलिए सम्यग्दृष्टि का ऐसा विचार कर क्रोध आने पर क्षमा भाव धारण करना प्रशम नाम का पहला गुण बतलाया है। क्षमा धारण न करने से श्रावक की बात तो दूर है लेकिन मुनिराज भी क्षमा के अभाव में जैसे-

द्वीपायन मुनि, क्रोधित होने से मरण कर ज्योतिष्क देव बने। इसलिए हमें हमेशा क्षमाभाव धारण करना चाहिए। क्रोध खटाई है तो बैर अचार रूप ले लेता है जो कि हमें भवों-भवों तक दुःख देता है। जैसे कि कमठ का जीव और पार्श्वनाथ का जीव इसका इकतरफा बैर दस भवों तक चला। और वायुभूति और भाभी का जीव सुकुमाल स्वामी और स्यालिनि हुआ और बैर भाव धारण कर कितने भवों के बाद यहाँ आकर आत्मा को दुःख देता है। इन उदाहरणों से हमें शिक्षा लेना चाहिए कि व्यक्ति के दोषों पर ध्यान देते हुये गुणों की ओर दृष्टि रखेंगे तो अवश्य ही हमारे अंदर क्रोधादि कषायों की उत्पत्ति नहीं होगी। इसलिए हमें क्रोधित व्यक्ति पर क्षमा भाव अवश्य धारण करना चाहिए।

दूसरा गुण- संवेग- संवेग किसे कहते हैं? सर्वार्थसिद्धि में संवेग की परिभाषा कहते हैं कि-

''संसार दुःखान्नित्य भीरुता संवेगः''[3]

संसार के दुःखों से नित्य (हमेशा) डरते रहना संवेग है। यहाँ पर दुःख से डरने का नाम दुःखों के कारण से डरने को कहा है। अन्न से प्राण टिके हैं इसलिए अन्न को ही प्राण कह दिया जाता है। वैसे ही दुःखों के कारणों को ही दुःख कह दिया जाता है। संसार में दुःखों के कारण क्या हैं? तो दुःखों के कारण हैं- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह ये पंच पाप हैं। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि-

''हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्''[4]

अर्थात् हिंसादि पाँच पापों से इहलोक व परलोक में निन्दा और तिरस्कार देखा जाता है। और दूसरे सूत्र में कहा है कि-

''दुःखमेव वा''[5]

अर्थात् ये दुःख ही हैं। मतलब पाँचों पापों को यहाँ पर दुःख कहा है ऐसे पाँच पापों से डरते रहने का नाम संवेग है। किसी भी प्राणियों के प्राणों का विघात करना हिंसा है, असत्य वचन कहना झूठ है, बिना दिये हुए वस्तु को लेना चोरी है, मैथुन को अब्रह्म या कुशील कहा है, मूर्छा भाव को परिग्रह कहते हैं। ये पाँचों ही पाप दुःख का कारण हैं और मूल कारण परिग्रह ही है। परिग्रह के पीछे ही शेष चारों पाप होते हैं। सम्यग्दृष्टि इन पापों को दुःख का मूल समझ करके इनसे विरक्त होना चाहता है और संवेग की प्राप्ति के लिये तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है-

''जगत्काय स्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थं।''[6]

संवेग की प्राप्ति के लिये जगत् के स्वभाव का चिंतन करना चाहिए। सम्यग्दृष्टि हमेशा भव से भयभीत रहता है। वह घर में संवेगी कैसे बना रहता है? छहढाला में कहते हैं-

''गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगर नारी को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥''[7]

जैसे जल में रहता हुआ कमल भी जल से भिन्न रहता है और कीचड़ में पड़ा हुआ सोना हमेशा निर्मल बना रहता है, जंग नहीं लगती। जिस प्रकार नगर नारी (वेश्या) लोगों से बनावटी प्रेम करती है वैसे ही सम्यग्दृष्टि घरवालों से बनावटी प्रेम करता है। इसका मन घर में नहीं लगता। वह मोह भी नहीं करता है क्योंकि वह संवेगी

बन चुका है। संसार से भयभीत सम्यग्दृष्टि ही रहता है। भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्र संसार से इतने भयभीत थे कि वे किसी से नहीं बोलते थे। जन्म से ही वे किसी से बात नहीं करते थे। भरत चक्रवर्ती का मन बहुत दुःखी था वे सोचते थी कि मैं चक्रवर्ती हूँ, छः खण्ड के वैभव का अधिपति हूँ, लेकिन हमारे ये पुत्र गूँगे क्यों हैं? तो वे सीधे आदिनाथ भगवान के समवशरण में पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रभु से निवेदन किया कि हे भगवन्! कौन से कर्म का उदय है? जिसके कारण हमारे ये 923 पुत्र गूँगे हैं। प्रभु ने (गणधर प्रभु ने) कहा तुम्हारे ये पुत्र तुमसे नहीं बोलेंगे हमसे बोलेंगे। अच्छा! आप से बोलेंगे मैं अभी लेकर आता हूँ, तुरंत भरत चक्रवर्ती सभी पुत्रों को लेकर समवशरण पहुँचे। भगवान से सभी पुत्र बोल पड़े कि हे भगवन्! हमने अनादिकाल से नित्य निगोद के दुःख सहन किये। अब हमें इस संसार में नहीं रहना। इस संसार में नहीं रहना। इस संसार से पार होने हेतु हे भगवन्! हम दिगम्बरी दीक्षा धारण करते हैं। तुरंत ही पुत्रों ने वस्त्रभूषण त्याग कर, केशलोंच किया और मुनि बन गये। सभी ध्यान में लीन हो गये। उन्होंने ऐसा ध्यान लगाया कि उन्होंने शुक्ल ध्यान में लीन होकर आठ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष को ही प्राप्त कर लिया। देखिए कितना पुरुषार्थ किया। संसार से इतने भयभीत हो गये कि एक ही भव में मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। यही है संवेग। इसी को गुरुदेव ने तीर्थोदय काव्य में इस रूप में कहा है-

डरा भव्य जो भव-सागर से, ना विषयों से राग करे।
सदा धर्म छाया में वह, भव-वांछा का त्याग करे॥
नहीं कभी फिर पंच तरह के, भव-परिवर्तन यहाँ करे।
धन्य! वही संवेग-भावना, से आत्मिक-सुख लहा करे॥ 357॥

तीसरा गुण- अनुकंपा- अनुकंपा के लक्षण को बताते हुये कहा है कि '**अनुग्रहार्द्रीकृत चेतसः परपीडात्मस्थामिव कुर्वतोऽनुकम्पना**' अर्थात् अनुग्रह में दयार्द्र चित्त वाले के दूसरे की पीड़ा को अपनी ही मानने का जो भाव होता है, उसे अनुकम्पा कहते हैं। अनुकम्पा शब्द का अर्थ कृपा समझना चाहिए। अहिंसा, दया, करुणा, कृपा, अनुकम्पा, रहम, वात्सल्य, परोपकार ये सभी एकार्थ वाचक हैं। यह जैन धर्म का मूल है। कहा भी है कि-

''दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लौं घट में प्राण॥''

हमारे आचार्य 'धर्मस्य मूलं दया'; 'धम्मो दया विशुद्धो' आदि कहते हैं। तृषातुर, क्षुधातुर अथवा दुःखी को देखकर जो जीव मन में दुःख को पाता हुआ, उसके प्रति करुणा में वर्तता है उसका वह भाव अनुकंपा है। सम्यग्दृष्टि के यह गुण है। श्रीरामचन्द्र जी की करुणा देखिए- जब सीता का अपहरण हो गया था तब रक्षा करने जो गया था उस जटायु पक्षी पर रावण ने अपनी तलवार से प्रहार कर दिया था। वह घायल होकर अधमरे के समान पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। सीता को ढूँढ़ते हुये जब रामजी आये तो उनकी दृष्टि उस जटायु पक्षी पर पड़ी तुरंत उनके दिल में सब दुःख को भूलकर करुणा उमड़ आयी। उस पक्षी के निकट जाकर उसको णमोकार मंत्र सुनाया। उस मंत्र को सुनकर उस पक्षी के शांतिपूर्वक प्राण निकल गये और जाकर देवपद पा लिया। ऐसे ही श्री पार्श्वनाथ भगवान ने राजकुमार अवस्था में मरणासन्न नाग-नागिन पर दया कर णमोकार मंत्र सुनाकर उन पर

उपकार किया और उन नाग-नागिन ने मरणकर धरणेन्द्र पद्मावती रूप देव पर्याय को प्राप्त किया और जीवन्धर कुमार ने मरणासन्न कुत्ते पर दया करके णमोकार मंत्र सुनाया तो वह मरण कर सुदर्शन यक्ष बन गया।

ऐसे सम्यग्दृष्टियों की दया विशाल रहती है। भगवान महावीर का उपदेश 'जियो और जीने दो' का मतलब जीव का परस्पर में उपकार करना ही है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि-

'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'[8]

जो सभी जीवों पर दया पालन करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टि हैं।

चौथा गुण-आस्तिक्य- **'आप्ते श्रुते तत्वचित्तमस्तित्वसंयुतं।**
आस्तिक्यमास्तिकैरूक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे॥'

जो सम्यग्दृष्टि जीव, सर्वज्ञ देव विषय में, व्रत विषय में, शास्त्र विषय में और तत्त्व विषय में ऐसा ही है ऐसा अस्तित्त्व भाव से संयुक्त चित्त से युक्त जीव का भाव आस्तिक्य गुण है।

'इदमेवेदृश्मेव, तत्वं नान्यन्नचान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्, सन्मार्गेसंशयारुचिः।'[9]

अर्थात् भगवान द्वारा बताया गया तत्त्व यही है, इसी प्रकार है अन्य नहीं, अन्य प्रकार नहीं। इस प्रकार तलवार की धार पर लगी हुई लोहे की बूंद के समान अडिग श्रद्धा होना, आस्तिक्य गुण है। इसी को गुरु महाराज ने कविता के रूप में लिया है।

पर्वतमाला भी विचलित हो, आग सुशीतल हो जाये।
लेकिन तत्त्व-मार्ग से भवि की, श्रद्धा कभी न डिग पाये॥
खड्ग धार पर लोहा-पानी, जैसे निष्कंपित रहता।
निःस्वार्थी सद्दर्शी मग में, निर्भयता से नित रहता॥[10]

जिन भगवान के द्वारा बताया गया वह तत्त्व क्या है? तो तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि

'जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं।'[11]

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व होते हैं। तत्त्व किसे कहते हैं? वस्तु के यथार्थ स्वरूप को तत्त्व कहते हैं। वे सात होते हैं-

* **जीव तत्त्व**- 'चेतना लक्षणो जीवः।' चेतना लक्षण वाला जीव है अथवा जिसमें जानने और देखने की शक्ति हो वह जीव तत्त्व है।

***अजीव तत्त्व**- जीव तत्त्व का विपरीत अजीव तत्त्व है। जिसमें जानने देखने की शक्ति नहीं है वह अजीव तत्त्व है।

***आस्रव तत्त्व**- आत्मा में कर्मों के आने के द्वार को आस्रव तत्त्व कहते हैं।

* **बंध तत्त्व**- आत्मा के कर्मों का बंध जाना, बंध तत्त्व है।

***संवर तत्त्व**- आत्मा में कर्मों के आने के द्वार को रोक देना संवर तत्त्व है।

***निर्जरा तत्त्व**- कर्मों का एकदेश क्षय होने को निर्जरा कहते हैं।

***मोक्ष तत्त्व**- समस्त कर्मों का क्षय होने को मोक्ष कहते हैं।

इसी को हम एक उदाहरण के माध्यम से भी समझ सकते हैं। समझिए कि एक नाव है। उसमें बैठा जीव नाविक है और जल अजीव है। नाव में एक छेद से जल का आना आस्रव है। जल का नाव में आकर रुक जाना बंध है। जिस छेद से नाव में जल आ रहा है उस छेद को बंद कर देना संवर है। नाव में जो जल आया है उसको थोड़ा-थोड़ा बाहर निकालना निर्जरा है और नाव से पूरा जल निकल जाना मोक्ष है।

इस तरह जो भगवान ने सात तत्त्व बताये हैं उस पर अडिग श्रद्धान होना आस्तिक्य गुण है। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में देव, शास्त्र, गुरु को ही तत्त्व कहा '**देवागमगुरुप्रवाहतत्त्वं**'[12] मात्र देव, शास्त्र, गुरु पर भी अडिग श्रद्धान हो तो भी आस्तिक्य गुण कहलाता है। देव पर श्रद्धान है तो उनकी वाणी में कहे गये शास्त्र एवं पर भी श्रद्धान हो ही जाता है। इसी में सात तत्त्व गभित हो जाते हैं। जैसे कि ऐसा अडिग श्रद्धा करने वाला अंजन चोर कुछ भी नहीं जानता था यहाँ तक कि णमोकार मंत्र भी नहीं जानता था लेकिन भगवान ने जो कहा है, आचार्यों ने जो कहा है उस पर इतना अडिग श्रद्धान हो गया था कि वह अपने प्राण त्यागने के लिए भी तैयार हो गया था। लेकिन प्राण तो नहीं निकले इसी बीच अटूट विश्वास के कारण उसे विद्यायें प्राप्त हो गयीं। उसने सोचा कि मंत्र से इतनी महिमा है तो फिर मुनि बनकर तप करेंगे तो उसकी महिमा तो और अधिक होगी। ऐसा समझकर उसने मुनिपद धारण किया और उसने इतनी तपस्या की कि उसे ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं और अंत में कैलाश पर्वत पर जाकर शुक्ल ध्यान के माध्यम से आठों कर्मों को नाश करके मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। अंजन से निरंजन बन गया। यही है आस्तिक्य गुण का फल। इसी को तीर्थोदय काव्य में इस प्रकार कहा है कि-

'मात्र मंत्र की इतनी महिमा, फिर तप की कितनी महिमा।
विचार जिसने धारा मुनि-पद, गायी फिर तप की गरिमा॥
प्राप्त ऋद्धि चारण कर, जिसने, किया दर्श कैलाश खुशी।
वहाँ कर्म का अंजन धोया, और निरंजन बना सुखी॥'[13]

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि इन चारों गुणों से मण्डित रहता है। तभी उसका सम्यग्दर्शन सुरक्षित रह पाता है अन्यथा मिथ्यात्व में जाने में कोई देर नहीं लगती। इसलिए हमें सम्यग्दृष्टि बनकर इन गुणों का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए।

तीर्थोदय काव्य में पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने अधिक सार-गर्भित विषयों को भरकर जैनधर्म की कुंजी के समान इस काव्य में बहुत महत्तम कार्य किया। यह काव्य सभी लोगों के लिए बहुत पठनीय है। ज्ञान के साथ-साथ जो इन बातों को आचरण में भी लायेगा वह निश्चित ही मोक्ष सुख को भी पायेगा।

अन्त में यही भावना भाती हूँ कि इस तरह गुरुवर अनेकानेक रचनायें के माध्यम से भव्यों को लाभान्वित करते रहें। गुरुवर दीर्घायु हों। इसी मंगल भावना के साथ त्रय बार नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु...।

आगम प्रमाण-

1. तीर्थोदय काव्य, आचार्य आर्जवसागर जी, पृष्ठ 43, पद्य-186
2. वारसाणुवेक्खा, आचार्य कुन्दकुन्द, गाथा-71
3. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद स्वामी
4. तत्त्वार्थ सूत्र, आचार्य उमास्वामी, अध्याय-7, सूत्र-9
5. तत्त्वार्थ सूत्र, आचार्य उमास्वामी, अध्याय-7, सूत्र-10

6.वही; सूत्र-12
7. छहढाला, पं. दौलतराम जी, तीसरी ढाल-15
8.तत्त्वार्थ सूत्र, आचार्य उमास्वामी, अध्याय-5, सूत्र-21
9.रत्नकरण्डक श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, गाथा-11
10. तीर्थोदय काव्य, आचार्य आर्जवसागर जी, पृष्ठ-21, पद्य-77
11. तत्त्वार्थ सूत्र, आचार्य उमास्वामी, अध्याय-1, सूत्र-4
12. रत्नकरण्डक श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र
13. तीर्थोदय काव्य, आचार्यश्री आर्जवसागर जी, पृष्ठ-21, पद्य-79

निर्ग्रंथ बने बिना मोक्ष संभव नहीं

दर्शन में एक आत्मा का दर्शन है। दर्शन में जब अध्यात्म जुड़ जाता है तो प्रदर्शन समाप्त हो जाता है। हमें अपनी आत्मा के दर्शन के लिये महान वीतरागी श्रेष्ठ साधक अथवा जिन्होंने अपनी आत्मा की उपलब्धि प्राप्त कर ली है उनका आलंबन लिये बिना आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता।

आत्मा के स्वरूप को जानने हमें परमात्मा की जरूरत है। हमें भगवान से भावना भानी चाहिए कि हे प्रभु! आपकी भक्ति हमें भव-भव में मिलती रहे। जब तक मुझे मुक्ति न मिले तब तक मैं राज्य पद संपदा का वैभव नहीं चाहता हूँ, मैं चक्रवर्ती का वैभव भी नहीं चाहता हूँ। मैं तो बस यही चाहता हूँ कि आपकी भक्ति मुझे भव-भव में मिलती रहे। आपका समागम मुझे प्राप्त होता रहे.....

''जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
बुध जाचहूँ तव भक्ति भव-भव, दीजिए शिवनाथ जी॥''

बिना पर वस्तु का त्याग किये बिना आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती। हमें भगवान से सदैव 6 बातें ही माँगना चाहिए।1. दुःखों का नाश हो, 2.कर्मों का क्षय हो, 3.बोधि की प्राप्ति हो, 4.सुगति गमन हो, 5.समाधि मरण हो, 6. जिनेन्द्र प्रभु के गुण रूप संपदा मुझे प्राप्त हो।

जीवन में धर्म की महिमा अचिंत्य है

जीवन में धर्म की महिमा अचिंत्य है। हमारे जीवन में धर्म का लाभ मिलना बड़ा ही दुर्लभ है। गुरुओं का सान्निध्य मिलना और भी ज्यादा दुर्लभ है। साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं। उनके चरणों में, उनके समागम में जो लाभ मिलता है, जो अनुभूति होती है, वह अन्यत्र नहीं होती है। संतों का समागम बड़ा ही महान है। अनादिकाल से हम इस संसार में रह रहे हैं, संसार के सभी प्राणी सुख-दुःख का अनुभव कर रहे हैं। अब हम अपनी इस पर्याय को मनुष्य जीवन में जैन कुल को सार्थक बनाने हेतु भगवान के बनाये मार्ग पर चलकर सार्थक कर लें। भगवान के दर्शन से, साधुओं की वंदना से वैसे ही पाप ज्यादा देर नहीं टिकते हैं। जैन धर्म हमें कई जन्मों के पुण्य से मिला है। इन्द्रियों को जीतने वाले जिन; जिनेन्द्र भगवान हैं और उनको मानने वाले जैन हैं। जिनेन्द्र भगवान का दर्शन बहुत ही जरूरी है। इन सब बातों को बताने वाले दिगंबर मुनिराज होते हैं क्योंकि भगवान के मोक्ष जाने के बाद वे गुरु ही हमें सन्मार्ग को बताने वाले, जिनागम का उपदेश देने वाले होते हैं। गुरु से लिये हुये छोटे-बड़े व्रत नियम संयम से हमारा जीवन बड़ा ही महान बनता है।

साभार-गुरु आर्जव वाणी

तीर्थोदय-काव्य में सल्लेखना व पञ्च-मरणों का विवेचन

-पं राजेश जैन शास्त्री, नई बस्ती ललितपुर (उ.प्र.)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।[1] भगवद्गीता में कहे गए श्री कृष्ण के उक्त कथन का तात्पर्य है कि जन्म के साथ मृत्यु का और मृत्यु के साथ जन्म का अनादिप्रवाह सम्बन्ध है। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म भी निश्चित है। यह प्रक्रिया तब तक प्रवाहमान रहती है जब तक जीव को मुक्ति की प्राप्ति नहीं, इस प्रवर्तमान प्रक्रिया में जीव ध्रुवसत्य को जानता हुआ भी राग-द्वेष में लिप्त रहता है।

सामान्यतः जीव जब सांसारिक अवस्था में उत्पन्न होता है तब जीव के प्रादुर्भाव की स्थिति को जन्मोत्सव के रूप में उल्लास व उत्साह के रूप में प्रकट किया जाता है तथा जब मृत्यु को प्राप्त होता है तब स्नेहीजन शोक व दुःख से संतृप्त होते हैं, परन्तु जैनधर्म में जहाँ जन्म के समय जन्म कल्याणक महोत्सव की प्रक्रिया का बखान किया है वहीं उसने मृत्यु को भी महोत्सव बनाकर मानव जीवन को सार्थक करने की आदर्श पद्धति प्रस्तुत की है। जब जन्म-मृत्यु की पीड़ा से पीड़ित प्राणी संसार चक्र को समाप्त कर लेने की सोच लेता है तब मृत्यु की अनिवार्यता पर शोक नहीं मात्र सावधानी का अवलम्बन लेता है। अपने शरीर को साधता हुआ यथायोग्य आहार पानी करता हुआ शरीर को धीरे-धीरे क्रमशः अपने त्याग के माध्यम से उसे कृश करता हुआ अपना मार्ग प्रशस्त करता चला जाता है। जैनधर्म की इस अवधारणा को सल्लेखना, सन्यासमरण, समाधिमरण, वीरमरण, पण्डितमरण आदि नामों से उल्लेखित किया है।

सल्लेखना का अर्थ परिभाषा व आवश्यकता-

सल्लेखना को परिभाषित करते हुए आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं- **सम्यक्काय-कषाय-लेखना सल्लेखना। कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तत्कारणह्रापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना।**[2] अर्थात् सम्यक् प्रकार से काय और कषाय दोनों कृश करना सल्लेखना है। तात्पर्य यह है मरण समय में की जाने वाली जिस क्रिया विशेष में बाहरी और भीतरी अर्थात् शरीर और रागादि दोषों का उनके कारणों को कम करते हुए प्रसन्नतापूर्वक बिना किसी दवाब के स्वेच्छा से लेखना अर्थात् कृशीकरण किया जाता है उस उत्तम क्रिया विशेष का नाम सल्लेखना है।

सल्लेखना का शाब्दिक अर्थ है सत्+लेखना अर्थात् अच्छी तरह से काय व कषायों को कृश करना। यह सल्लेखना; मरण के समय प्रीतिपूर्वक ग्रहण की जाती है जैसा कि आचार्य उमास्वामी जी ने कहा है- '**मारणान्तिकी सल्लेखनाजोषिता**'[3] क्योंकि सल्लेखना जीवन भर आचरित समस्त व्रतों, तपों और संयम की संरक्षिका है इसलिए इसे जैन संस्कृति में व्रतराज कहा है। इसी संदर्भ में पं. आशाधर जी ने लिखा है-

नावश्यं नाशिने हिंस्यो, धर्मो देहाय कामदः।
देहो नष्टः पुनर्लभ्यो, धर्मस्त्वत्यन्तदुर्लभः॥[4]

अर्थात् नश्यमान शरीर के लिए इच्छित फलदायक धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिए क्योंकि शरीर तो

पुनः प्राप्त हो सकता है परन्तु नष्ट हुआ धर्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। अतः अपने संयममय जीवन को सार्थक बनाने हेतु प्रत्येक साधु और श्रावक के लिए समाधिमरण की प्राप्ति हेतु सदा सजग और प्रयत्नशील रहना अपेक्षित है। सल्लेखना के बारे में आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी लिखते हैं-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥[5]

अर्थात् असाध्य उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा और रोग के उपस्थित होने पर धर्म की रक्षा के लिए शरीर के परित्याग करने को आर्य पुरुष सल्लेखना कहते हैं। उक्त आचार्यों का आधार बनाकर तीर्थोदय काव्य में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ने लिखा है-

रत्नत्रय की रक्षा करने, भविजन समाधिमरण करें।
धर्म-हानि ना हो पाती है, शीघ्र मोक्ष में गमन करे॥
युगों-युगों से प्राणी ने वे, मरण अनेकों किये यहाँ।
नहीं हुआ है सुमरण जिसका, धर्म मिला ना कभी जहाँ॥[6]

अर्थात् प्रत्येक श्रावक व साधु को अपने रत्नत्रय की पूर्णता व शीघ्र मोक्षपद के लिए समाधिमरण का भाव अवश्य रखना चाहिए। अनादिकाल से भवभ्रमण में जीव का सुमरण भी सहकारी है क्योंकि उत्तम मरण करने वाला जीव शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है। पद्मपुराणकार ने स्पष्ट लिखा है कि जो सद्गृहस्थ समाधिपूर्वक मरण करता है वह (अधिक से अधिक) आठ भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवती आराधना में भी स्पष्ट कथन है कि समाधिमरण करने वाले अधिकतम सात से आठ भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सल्लेखना का महत्त्व- आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सल्लेखना के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है[7] कि मरण किसी को इष्ट नहीं है, जैसे अनेक प्रकार के सोना-चाँदी बहुमूल्य वस्त्र आदि का व्यवसाय करने वाले किसी व्यापारी को अपने उस घर का विनाश कभी इष्ट नहीं है जिसमें उक्त बहुमूल्य वस्तुएँ रखी हुई है। यदि कदाचित् उसके विनाश का कारण (अग्नि का लगना, बाढ़ आ जाना या राज्य में विप्लव होना आदि) उपस्थित हो जाये, तो वह उसकी रक्षा का पूरा उपाय करता है और जब रक्षा का उपाय सफल होता हुआ दिखाई नहीं देता, तो घर में रखे हुये बहूमूल्य पदार्थों को बचाने का भरसक प्रयत्न करता है और धन को नष्ट नहीं होने देता है। उसी तरह व्रत शीलादि गुणों का अर्जन करने वाला व्रती श्रावक या साधु भी उन व्रतादिकगुण रत्नों के आधारभूत शरीर की पोषक आहार-औषधादि द्वारा रक्षा करता है, उसका नाश इसे इष्ट नहीं है पर दैववश शरीर में उसके विनाश-कारण (असाध्य रोगादि) उपस्थित हो जायें तो वह उनको यथासाध्य दूर करने का प्रयत्न करता है। परन्तु जब देखता है कि उनका दूर करना अशक्य है और शरीर की रक्षा अब सम्भव नहीं है तो उन बहूमूल्य व्रत शीलादि आत्म गुणों की वह सल्लेखना द्वारा रक्षा करता है और शरीर को नष्ट होने देता है। इसी संदर्भ में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं-

अन्तः क्रियाधिकरणं तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं॥[8]

अर्थात् जीवन में आचरित तपों का फल वस्तुतः अन्त समय में ग्रहीत सल्लेखना ही है अतः वे उसे पूरी शक्ति के साथ धारण करने पर जोर देते हैं।

तीर्थोदय काव्य में आचार्य श्री ने भी रत्नत्रय बचाने के लिये सल्लेखना धारण की बात स्पष्ट कही है-

उपसर्गों या रोगों में जब, प्रतीकार ना हो सकता।
बहुत बड़ा दुर्भिक्ष आय जब, और दूर ना हो सकता॥
इसी तरह उस बूढ़ेपन में, रत्नत्रय ना पल सकता।
तभी धारते सल्लेखन मुनि, तब रत्नत्रय बच सकता॥[9]

अनन्तर कहा है कि सल्लेखना को धारण करने वाला सम्यग्दृष्टि जीव मरण कर देवपद को प्राप्त करता है तथा स्वर्गों में प्राप्त होने वाले सुखों में आसक्त न होकर समवसरण में जाकर तीर्थंकर भगवान का दर्शन करता है। यदि साधु नित्य व्रतों का निर्दोष पालन कर, बारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए सल्लेखना धारण करते हैं तो वह नियम से देवगति को प्राप्त होते हैं। क्षपक की साधना को नमन करते हुए कहा कि सल्लेखना को धारण करने वाले साधु या श्रावक धैर्यवान व वीर होते हैं और ऐसे धैर्यशाली जीवों को नियम से सद्गति प्राप्त होती है।[10]

मरण का स्वरूप- संस्कृत के **मृद्प्राणत्यागे** धातु पाठानुसार मृद् धातु प्राणत्याग अर्थ में प्रसिद्ध है। सामान्य रूप से आयुकर्म की समाप्ति पर जीव का इस पुद्गल शरीर से विच्छेदन ही मरण है अथवा प्राणविसर्जन का नाम मरण है। मरण को परिभाषित करते हुए आ. पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है-

''स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां बलानां च कारणवशात्संक्षयो मरणम्।''[11]

अपने परिणामों से प्राप्त हुई आयु का, इन्द्रियों का, और मन, वचन, काय इन तीन बलों का कारण विशेष मिलने पर नाश होना मरण है। भगवती आराधना में आचार्य शिवार्य का कथन है-

पंक्ति मरणं निगमो विनाशः विपरिणाम इत्येकोऽर्थः। प्राणपरित्यागो मरणम्।[12]

मरण, निगम, विनाश, विपरिणाम ये सभी एकार्थवाचक है अथवा प्राणों के परित्याग का नाम मरण है या प्रस्तुत आयु से भिन्न अन्य आयु का उदय आने पर पूर्व आयु का विनाश होना मरण है।

मरण के भेद- आचार्य अकलंक स्वामी ने मरण के दो भेद कहे हैं तद्भव मरण व नित्य मरण। प्रतिक्षण आयु आदि प्राणों का बराबर क्षय होते रहना नित्यमरण है तथा नूतन शरीर रूप पर्याय को धारण करने के लिए पूर्वपर्याय का नष्ट होना तद्भवमरण है।[13]

भगवती आराधना में सामान्य रूप से सत्रह प्रकार के मरणों का उल्लेख करते हुए मुख्य रूप से पाँच भेदों का वर्णन किया है। तथागत वर्णन आचार्य श्री के 'तीर्थोदय काव्य' में भी समीचीन भाषा में समुपलब्ध है। यथा-

आगम में ये पंच तरह के, मरण कहे हैं प्रभु-जिन ने।
बाल-बाल ही प्रथम मरण है, दूजा बाल कहा जिन ने॥
कहा बाल-पंडित तीजा है, चौथा पंडित मरण कहा।
और पाँचवाँ पण्डित-पण्डित, जिनवर का वह मरण रहा॥[14]

अर्थात् मरण पाँच प्रकार का है। बाल-बाल मरण, बालमरण, बालपण्डित मरण, पण्डित मरण, पण्डित-पण्डित मरण। अज्ञ मिथ्यादृष्टि जीवों के बाल-बाल मरण कहा गया है उनके अव्यक्त व्यवहार मोक्षमार्ग रूप, ज्ञान, दर्शन और चारित्र होने से अर्थात् रत्नत्रय के अभाव में बाल-बाल मरण कहा है। दूसरा बालमरण अविरत सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् चौथे गुणस्थानवर्ती जीव के होता है। बारह व्रतों को पालने वाले, गृहस्थ के सहसा मरण आने पर अथवा बन्धुओं ने जिसको दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी हो, ऐसे प्रसंग में शरीर सल्लेखना और कषाय सल्लेखना के साथ आलोचना कर निःशल्य होकर व्रतियों के बीच संस्तर आरोहण करता है। ऐसे संयमासंयमी जीव के बालपण्डित मरण होता है। चारित्रवान मुनियों के पण्डित मरण होता है। वह भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी मरण व प्रायोपगमन के भेद से तीन प्रकार का है। पंचम पण्डित-पण्डित मरण मोक्षगामी केवली भगवान के होता है।

बाल-बाल है मरण रहा जो, महा अज्ञ मिथ्यादर्शी।
करता, अरु वह बालमरण है, स्वल्प अज्ञ सम्यग्दर्शी॥
एकदेश वे व्रत के धारी, करते मरण बालपण्डित।
पण्डित सुमरण मुनि का होता, जिनवर का पण्डित-पण्डित॥[15]

उक्त पाँचों में बाल-बाल मरण समस्त संसारी मिथ्यादृष्टि के होता है जो धर्मसम्पदा को देने वाला है। बालपण्डित मरण अणुव्रती जीव के होता है, जो नियम से प्रथम से सोलह स्वर्ग तक वैमानिकों में जन्म लेता है, पण्डित मरण छठे, सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज के होता है जो स्वर्ग और पंचम स्वर्ग में स्थित लौकांतिक तथा चौथे काल में सोलहवें स्वर्ग से ऊपर के अहमिन्द्रादि एवं सर्वार्थसिद्धि तक पहुँचा देता है। तथा पण्डित-पण्डित मरण जिनेन्द्र भगवान के होता है, जो नियम से मोक्षपद दिलाता है। यथा-

प्रथम मरण मिथ्यादर्शी का, ना उत्तम-गति देता है।
सम्यग्दर्शी का हो सु-मरण, धर्म-सम्पदा देता है॥
अणुव्रती का सु-मरण हो तब, वैमानिक वह शुभ गति हो।
साधु मरण भी सुरगति दे या-बने जिनेश्वर शिवगति हो॥[16]

सल्लेखना क्यों व कैसी- तीर्थोदय काव्य में आचार्य श्री ने लिखा है-

रत्नत्रय की रक्षा में मुनि, तन-ममता को तज देते।
मूल्यवान उस रत्नत्रय से, उत्तम-गति जो भज लेते॥
उस समाधि के मंगल क्षण में, क्षपक धर्म से पूर्ण रहे।
नहीं वेदना बेचैनी हो, यही भावना पूर्ण रहे॥[17]

अर्थात् सम्पूर्ण रत्नत्रय की रक्षा करने के लिए श्रेष्ठ साधुजन सल्लेखना को धारण कर उत्तम गति को प्राप्त करते हैं और जब निरतिचार समाधि पूर्ण होती है तो वह निश्चित ही शिवगति को देने वाली है।

क्षपक की सेवा में 48 मुनिराज दिन-रात सजग रहते हैं उनकी वैयावृत्ति से लेकर आगम की चर्या आदि

सारी क्रियाएँ लघुता पूर्वक की जाती हैं जो क्षपक का भव सुधारकर उत्तम गति में पहुँचाने के लिए होती हैं यथा-

क्षपक मुनीश्वर की सेवा में, अड़तालीस रहें मुनिवर।
हाथ पकड़कर सजग उठाते, तथा चलाते हैं मुनिवर॥
नित्य रात में पहरा देते, करवट देते मृदुता से।
पैर आदि वे अंग दबाते, मीठे बोलें लघुता से॥[18]

तीर्थोदय काव्य में यह भी आचार्य श्री ने लिखा कि समाधि उन्हीं श्रेष्ठ मुनियों की होती है जिन्होंने अपने जीवन में अनेक सल्लेखनाएँ कराई हों। इस प्रकार संपूर्ण काव्य में सभी विषयों को लेकर जो अप्रतिम वर्णन है, वह श्रेष्ठता व आगमवेत्ता का परिचायक है अतः सभी श्रावकों को इस आलौकिक पद्यमय ग्रन्थ का स्वाध्याय कर अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए।

आगम-प्रमाण-

1. श्रीकृष्ण भगवद्गीता 2-27
2. आ.पूज्यपाद स्वामी, सर्वार्थसिद्धि 7-22
3. आ. उमास्वामी जी, तत्त्वार्थ सूत्र 7-22
4. पं. आशाधर जी सागर धर्मामृत 8/17
5. आ. समन्तभद्र स्वामी, रत्नकरण्डक श्रावकाचार-122
6. आ. आर्जवसागर, तीर्थोदय काव्य 443
7. आ. पूज्यपाद स्वमी, सर्वार्थसिद्धि 7-22
8. आ. समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्डश्रावकाचार-123
9. आ. आर्जवसागर, तीर्थोदय काव्य-464
10. वही; 465-466
11. आ. पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि 5/20/289/2
12. आ. शिवार्य, भगवती आराधना, विजयोदय टीका 25/85-86
13. आ.अकलंक स्वामी, राजवार्तिक 7/22/2/550/20
14. आ. आर्जवसागर, तीर्थोदय काव्य 444
15. वही; 445
16. वही; 465
17. वही; 445
18. वही; 467

तीर्थोदय-काव्य में अष्ट-मद विवेचन

-डॉ.पल्लवी जैन, पुत्री श्री रतनलाल जैन-इन्द्रा जैन,
अशोका गार्डन, भोपाल

अहं-भाव किसी भी तरह कल्याण का मार्ग नहीं है, अहं-भाव तो दुर्गति का ही मार्ग है। जितने जीव परम शुद्ध-सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए हैं, वे मार्दव भाव को धारण करके ही हुए हैं। मान कषाय से सम्मान नहीं मिलता, मद भी अहंकार ही है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं कि हम सब के चित्त में आठ फण वाला एक भयंकर विषधर बैठा है जो कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन, बल, वैभव और ऐश्वर्य के अभिमान से आत्मा को आक्रान्त कर रहा है। इसके अधीन हो मनुष्य अपना सर्वस्व गँवा रहा है। ये आठ मद आत्मा के स्वभाव नहीं, विभाव है।

आगम में आठ मदों की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि-

ज्ञानं-पूजा-कुलं-जातिं-बल-ऋद्धिं-तपो-वपुः।
अष्टा-वाश्रित्य मानित्वं-स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥ (र.श्रा.)[1]

1. ज्ञान का मद (अहंकार) होना।
2. पूजा-प्रतिष्ठा-भीड़ का अहंकार होना।
3. कुल-(पिता) के पद-वैभव का अहंकार होना।
4. जाति (मातृपक्ष) का मद होना।
5. बल- सैन्य बल अथवा शारीरिक बल का अहंकार होना।
6. ऋद्धि का अहंकार होना।
7. तप का अहंकार होना।
8. रूप का अहंकार होना।

1. ज्ञान मद- 'ज्ञान' का मद बहुत खतरनाक है। वैसे 'ज्ञान' हमारे मद और दर्प को दूर करने का साधन है। सच्चा ज्ञानी विनम्र होता है। विनम्रता, ज्ञानी की पहचान है। अज्ञानी थोड़ा ज्ञान पाकर अपने आप को बहुत बड़ा ज्ञानी मानने लगता है। वह सर्वत्र अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करता है। एक पण्डित नाविक के साथ नदी पार कर रहा था। पण्डित जी ने नाविक से पूछा- क्यों भाई! तुम्हें व्याकरण आता है''? नाविक ने कहा- 'नहीं।'' पण्डित जी ने कहा- तो तुम्हारी 4 आना जिन्दगी गई।''पुनः पण्डित जी ने पूछा- ''तुम्हें ज्योतिष आता है?'' नाविक के 'ना' कहने पर पण्डित जी ने कहा- ''तब तो तुम्हारी 8 आना जिन्दगी गयी।'' अचानक नदी में तेज भँवर के कारण नाव का सन्तुलन बिगड़ गया। नाविक ने पूछा-''पण्डित जी आपको तैरना आता है?'' पण्डित जी ने कहा-''नहीं!'' नाविक-''तब तो आपकी 16 आना जिन्दगी गयी और यह कहकर नाविक तैरकर पार हो गया, पण्डित जी डूब गये।

'ज्ञान' तो ज्ञानावरण क्षयोपशम के आधीन है। अतः सम्यक्दृष्टि जीव को ज्ञान का मद नहीं करना

चाहिए। महावीर भगवान के समवसरण में मानस्तम्भ को देखकर इन्द्रभूति गणधर का ज्ञान का मद गल गया। इस मद को समझाते हुये आचार्य भगवन् लिखते हैं-

नहीं जगत् में मेरे सदृश, ज्ञानवान पण्डित कोई ।
नहीं महाकवि, शास्त्री मुझ सम, जग में और दिखे कोई ॥
जो भी दिखते अज्ञ सभी हैं, जुगनू-सम सूरज आगे ।
ज्ञान-गर्वधर मिथ्यात्वी वह, तथा प्रशंसा जो माँगे ॥[2]

2. पूजा-प्रतिष्ठा मद- बन्धुओं जो दुनियाँ में अपने आप को बड़ा मानता है, उससे छोटा कोई है ही नहीं। ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा पर इतराने वाले लोग ईश्वर को भूल जाते हैं। जो ईश्वर की आराधना करते हैं वे अपने जीवन के ''परम ऐश्वर्य'' पर ध्यान रखते हैं, बाहरी एश्वर्य पर नहीं।

रावण को अपने ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा पर बड़ा अभिमान था। लेकिन लंका की ईंट से ईंट बज गयी। आज एक कहावत सुनने को मिलती है कि- '' एक लख पूत सवा लख नाती, रावण के घर में दिया न बाती।'' इसी बात को देखें-

कितने जन हैं मुझे पूजते, तथा आरती करते हैं ।
बढ़ा-चढ़ाकर गुण भी गाते, फूल-मालती रखते हैं ॥
फूले जो इस पूजा-मद में, कर्म सँजोता दुख पाता ।
पूजा-रागी मिथ्यादर्शी, नहीं पूज्य जिन बन पाता ॥[3]

3. कुल मद- पिता का पद-वैभव , व्यक्ति के अन्दर अभिमान भर देता है। बड़े-बड़े तीर्थंकर, महापुरुष और परमात्मा को भी कभी न कभी पशु की पर्याय में जन्म लेना पड़ा। किसी का कुल शाश्वत नहीं है। आज अगर तुम उच्च कुल में हो तो कल नीच कुल में भी जन्म लेना पड़ सकता है। आगम में तो यह बताया गया है कि एक निगोदिया प्राणी भी अगर मनुष्य होता है तो अपनी साधना के बल पर उसी भव में मोक्ष जा सकता है। उच्च तो वह है जिसका आचरण श्रेष्ठ है। जिसका आचरण उच्च है वही व्यक्ति उच्च कुल में बैठने का अधिकारी है। शिखर पर बैठने से कौआ कभी भगवान नहीं बन सकता। इसी बात को गुरु कहते हैं कि-

पिता-पक्ष के जन राजादिक, उच्च अगर तो मद करना ।
नहीं देखना नीचे जन को, ऊपर सिर करके चलना ॥
बड़ा रहा है मेरा कुल यह, धन वैभव भी क्या कहना ।
हीरा, मोती और खजाना, दुख क्या ? सुख में ही रहना ॥[4]

4. जाति मद- कोई जाति (मातृपक्ष) निन्दनीय नहीं है। 'गुण' कल्याण का कारण है। चाण्डाल भी व्रत धारण करने पर श्रेष्ठ जाति का बन सकता है। किसी जीव की कब कैसी परिणति हो जाये कहा नहीं जा सकता। एक आदमी के पैरों से टकराकर पत्थर गुलाब के पौधे से जा लगा। गुलाब के फूल ने उस पत्थर का उपहास किया। पत्थर अपनी स्थिति को जानता था और मर्माहत होते हुये भी मौन रहा। एक दिन शिल्पी के हाथ वह पत्थर लग

गया और उसने उस पत्थर को सुन्दर प्रतिमा का रूप देकर पूजा-घर में विराजमान कर दिया। पहली पूजा में उसने जो फूल चढ़ाया वह वही फूल था, जिसने पत्थर का उपहास किया था। उस फूल ने पत्थर का यह रूप देखा तो शर्म से झुक गया। हर व्यक्ति पत्थर की तरह अपने अन्दर की भगवत्ता को प्रकट कर सकता है। अभिमान करना है तो भीतर बैठी भगवत्ता का करो। प्रत्येक आत्मा में 'परमात्मा' है, इस भगवत्ता का अहसास करें। हमारा अहंकार स्वयं दूर हो जायेगा। यह बात तीर्थोदयकाव्य में कही है-

मातृ-पक्ष के भूपति जन हों, उच्च जाति के धनी अगर ।
नीचा देखे अन्य जाति को, मद धारे पापों का घर ॥
धर्म कहे नीचे से ऊपर, सदा उठाओ लोगों को ।
संकर ना वह वर्ण-लाभ हो, शिव पाओ तज भोगों को ॥[5]

5.बल मद- सम्यग्दृष्टि जीव विचार करता है कि मेरी आत्मा अनन्त बल को धारण करने वाली है। मिथ्यादृष्टि जीव शरीर के बल को अपनी ताकत समझता है। आदमी के पास थोड़ा-सा बल आ जाता है तो वह अभिमान में इतना चूर हो जाता है कि मानो उसके बराबर कोई है ही नहीं। हम किस बल पर इतराते हैं? जब तक मौत नहीं आती है, तब तक यह बल दिखाई पड़ते हैं जिस क्षण मौत आ जाये, उस क्षण सब खत्म हो जायेगा इसलिए बल का अहंकार ना करें।

भ्राता भरत का बल का मद चूर हो गया जब उनका चक्ररत्न भी बाहुबलि की परिक्रमा देकर लौट आया। एक साँप मेंढक को निगल रहा था, मेंढक अभी आधा बाहर था, उसने मछली को देखा और टर्राना शुरू कर दिया। हम आज काल के गाल में इसी तरह दबे हुये हैं। जब तक काल नहीं आता तब तक टर्रा लो, काल का क्षण आने पर सब खत्म जो जायेगा। एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम्हें जमीन में दबना पड़ेगा। इसलिए बल का भी अहंकार न करो। हम बाह्य संयोगों के प्रति अभिमान को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को समझें और जीवन में विनम्रता को विकसित करें। इसी बात को आचार्य श्री कहते हैं कि-

बल-मद धारे कहता प्राणी, तन मेरा बलवन्त बना ।
शक्तिवान ना कोई मुझ-सम, इष्टाहारी पूर्ण बना ॥
लोकजनों के आगे मस्ती-चाल चले गर्वित होकर ।
भुजा दिखाता भौंह चढ़ाता, मोही अज्ञ जहाँ होकर ॥[6]

6. ऋद्धि-धन का मद-

''कनक-कनक ते सौ गुनि मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराये नर ता पाये बौराय॥

कनक(धतूरा) खाने से जिस प्रकार व्यक्ति बौराने लगता है, उसी प्रकार कनक अर्थात् सोना (धन) प्राप्त करने पर भी वह बौराने लगता है। दौलत के नशे में आदमी अपने आप को दुनिया में सबसे बड़ा समझने लगता है। इसी प्रकार बड़े-बड़े तप करने से व्यक्ति को जब ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है तो वह बुद्धि आदि ऋद्धि के मद में चूर हो जाता है। सिकन्दर जैसा विश्व विजेता, जिसने अपार सम्पदा एकत्र की लेकिन उसके साथ भी कुछ

नहीं गया। वह भी खाली हाथ ही संसार से चला गया।

वस्तुतः धन, वैभव, प्रतिष्ठा, ऋद्धियाँ आदि जितने भी बाह्य संयोग हैं वे सभी अशाश्वत हैं, क्षण-क्षयी हैं। उन पर अहंकार करना हमारी अज्ञानता है। बाह्य संयोगों पर अहंकार करने की अपेक्षा उन्हें क्षणिक जानकर आत्मा के शाश्वत स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। ये बाह्य उपलब्धियाँ, ऋद्धियाँ, वैभव आदि सब क्षणिक मात्र हैं। ये सब यहीं छूट जायेगा। और भी कहा है कि-

बड़े-बड़े तप को तपने से, बना ऋद्धिधारी हूँ मैं ।
बड़े-बड़े वह अतिशयकारी, कार्य दिखाता भी हूँ मैं ॥
बुद्धि आदि जो ऋद्धि धारके, गर्वित-चित्त सदा होता ।
करे तिरस्कृत अगर जनों को, समदर्शी न कदा होता ॥[7]

7. तप मद- मैं बड़ा तपस्वी हूँ, मेरे बराबर तप करने वाला संसार में कोई दूसरा नहीं है। ऐसी परिणति तप-मद है। सबसे बड़ा तप तो अपने अभिमान को गलाना है। तप का उद्देश्य आत्मा की पवित्रता है। वह क्रोध, मान, मद आदि वैभाविक भावों की शुद्धि से ही सम्भव है। इसलिए सच्चे तपस्वी मद नहीं करते। वे विनम्रता की प्रतिमूर्ति होते हैं। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्रीशान्तिसागर महाराज से किसी ने पूछा- महाराज आपका परिचय? महाराज जी ने कहा- ''मनुष्य लोक में कुल तीन कम नौ करोड़ मुनिराज हैं, उनमें मेरा सबसे आखिरी स्थान है।'' तप वह है, जिससे वीतरागता प्रकट हो। 'मद' तप का नाश करने वाला है। अतः सम्यग्दृष्टि जीव तप का मद नहीं करता। जैसे कहा है-

मास-मास का उपवासी मैं, बड़ा तपस्वी हूँ न्यारा ।
नियम धारता बड़ा-बड़ा हूँ, तप से ख्यात बना सारा ॥
वर्तमान में देखो मुझ-सम, नहीं तपस्वी है दिखता ।
ऐसा सोचे और किसी की, उन्नति को भी ना सहता ॥[8]

8. रूप मद- **केसर चन्दन पुष्प सुगंधित वस्तु देख सारी।**
देह परसते होय अपावन निशदिन मल जारी॥[9]

हम अपने शरीर पर पवित्रतम वस्तु भी लगायें तो शरीर पर लगते ही वे पवित्रतम वस्तुएँ भी अपवित्र हो जाती हैं। इसलिए शरीर के ऊपर ज्यादा आसक्त न हो। शरीर को सजाने-संवारने में मत उलझो। सनतकुमार चक्रवर्ती बहुत रूपवान थे। कामदेव सा सुन्दर रूप था। स्वर्ग के देव भी उनकी प्रशंसा करते थे। एक देव रूप बदलकर चक्रवर्ती को देखने आया। चक्रवर्ती को व्यायामशाला में धूल में लिपटा देखकर उनके सुन्दर शरीर की प्रशंसा करने लगा। चक्रवर्ती ने गर्व में आकर कहा- ''आप मेरा असली रूप देखना चाहते तो मेरे दरबार में आओ। चक्रवर्ती शृंगार कर दरबार में आया परन्तु देव ने उन्हें देखकर कोई प्रतिक्रिया नहीं की। देव ने कहा कि- ''मैंने तुम्हारा पहले जो रूप देखा वैसा सुन्दर रूप अब नहीं है। आपकी कञ्चनमयी काया में अब कुष्ठ के कीटाणु आ गये हैं। चक्रवर्ती का रूप-मद चूर-चूर हो गया।

जगत् में सबसे सुन्दर अपना आत्म स्वरूप है। उसका ही सत्कार करो। आचार्य श्री विद्यासागर महाराज जी कहते हैं कि- ''दीप का नहीं ज्योति का, सीप का नहीं मोती का सत्कार करना चाहिए। तीर्थोदय काव्य यही

कहा है कि-

सुडोल सुंदर मेरा तन यह, जग में शोभा पाता है ।
लगता नहीं दूसरा कोई, मेरे-सम जो भाता है ॥
मात्र देखते ही देखो सब, क्षण में मोहित होते हैं ।
धारे वपु-मद सोचे मुझ-सम, देव भी कुछ न होते हैं ॥[10]

कुछ क्षण की निर्मद साधु की संगति भी दु:खों का क्षय करती है। सुख-समृद्धि की प्राप्ति कराती है एवं परम्परा से मोक्ष प्राप्त कराती है। जो जीव इन आठ मद को धारण नहीं करता है, वही प्राणी शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति कर पाता है। अन्यथा ये मद सम्यग्दर्शन के आठ दोष कराकर मनुष्य को संसार रूपी पंक में धसा देते हैं। अत: मोक्ष पद पर कदम बढ़ाने की भावना को इन अष्ट मदों का परित्याग करें। आत्मा के सच्चे स्वरूप को समझें।

★★★

आगम-प्रमाण

1. रत्नकरण्डक श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, पद्य-25
2.तीर्थोदय काव्य, आचार्यश्री आर्जवसागर जी, पद्य-128
3. वही; पद्य-129
4. वही; पद्य-130
5. वही; पद्य-131
6. वही; पद्य-132
7. वही; पद्य-133
8. वही; पद्य-134
9. वही; पद्य-135
10. बारह भावना, मंगतराय जी कृत
11. वही; पद्य-136

आप जैसा बन पाऊँ

-अदिति जैन, पिड़ावा

मूरत ये चतुर्थ काल-सी लगती है।
सूरत ये गुरु में प्रभु-सी झलकती है॥
नगर में धर्म; गुरु आपकी बदोलत है।
वर्तमान को गुरु आपकी जरूरत है॥
भाग्यसागर-सा भाग्य मेरा ये खुल पाये।
सजगसागर-सी सजगता भी मुझमें आ पाये॥
महत्सागर-सी महानता को लेकर चल पाऊँ।
सानन्दसागर-सा आनन्द मुझमें भर जाये॥
विभोरसागर-सी तल्लीनता को धर पाऊँ।
देश ओर काल से परे से खुद को कर पाऊँ॥
सत्-सत् वन्दन गुरु - संघ के चरणों में।
अनन्य-भाव से गुणगान इनका कर पाऊँ॥
कुटिल परिणाम को हृदय से अपने तज पाऊँ।
शुद्ध-हृदय से चारित्र पालन कर पाऊँ॥
आर्जवसागर जी से ऋजुता भी मुझमें आ जाये।
विद्यागुरु-सम परिपथ पर मैं चल पाऊँ॥

आध्यात्मिक एवं समीचीन व्यवहारिक जीवन में आचार्य श्री आर्जवसागर के साहित्य का योगदान

-कोमलचंद जी प्रिंसिपल, पिड़ावा (राज.)

इन पंक्तियों के साथ गुरु चरणों में बारम्बार नमन करता हूँ कि

''सम्यग्दर्शन शुभ्र चांदनी, ज्ञान के दीपक जलते हैं,
सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित्र से झरझर झरने झरते हैं,
गुरु वाणी सुरभि यों महके, महक रहा हो ज्यो चंदन,
आर्जवसागर गुरु चरणों में, करता हूँ शत्-शत् वंदन॥11॥

हमारे महान पुण्योदय एवं सौभाग्य से धर्म नगरी पिड़ावा के श्रावकों को आचार्य श्री आर्जवसागर जी ससंघ 2024 का वर्षायोग प्राप्त कराने का अवसर प्राप्त हुआ...। इस अभूतपूर्व चातुर्मास में हमें वह सब मिल रहा है जिसको मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ पूज्य गुरुवर के गुणों का वर्णन करना सूरज की दीपक दिखाने के समान होगा।

''होनहार विरवान के होत चीकने पात''

आचार्यश्री ने फुटेरा कलाँ नगर जिला दमोह में पिता श्री शिखरचन्द जैन एवं माता श्री मायाबाई के यहाँ पुत्ररत्न पारसचन्द जैन के रूप में 11 सितम्बर 1967 को जन्म लिया और 17 वर्ष की अवस्था में 1984 में ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया अगले वर्ष 1985 में ही क्षुल्लक दीक्षा धारण कर 1987 में ऐलक दीक्षा धारण कर ली और 1988 में तो आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज से मुनि दीक्षा लेकर अपने जीवन को धन्य किया, समाधि पूर्व आचार्य श्री सीमन्धरसागर जी महाराज जी द्वारा इन्दौर में आचार्यपद प्रदान किया गया।

आचार्य पद प्राप्त करने के पश्चात् गुरुदेव ने उसे सच्चे मायने में सार्थक भी किया, अगर यह कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मुनिवर का दिगम्बर नग्न स्वरूप ही अध्यात्म का स्वच्छ दर्पण है। कवि श्री युगलजी ने सच ही कहा है कि-

''हे गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है''

इसी प्रकार और भी विद्वानों ने भी लिखा है-

निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते।
जो ज्ञानी ध्यानी समरस ज्ञानी, द्वादश विधि तप नित करते॥
जो चलते फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों ये शीश झुकाते हैं।
हम चले आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं॥

सिद्ध परमेष्ठी तो मोक्ष महल में विराजे हैं, चलते फिरते सिद्धों से गुरु ही हमारे पथ प्रदर्शक हैं और यही हमें सच्चा मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं, आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने अपनी कृति तीर्थोदय काव्य में आचार्य परमेष्ठी के मूलगुण दर्शाते हुए लिखा है-

बारह तप अरु षट् आवश्यक, पंचाचार व धर्म दशों।
गुप्ति त्रय से युक्त रहें वे, धर्म बताते दिशा दशों॥
शिष्य गणों को निर्दोषी जो, सदा बनाते उत्तम हैं।
उपकारी वे धर्म धनी वे, पाते सुख परमोत्तम हैं॥[2]

परम उपकारी गुरुवर में ये सारे ही गुण परिलक्षित होते हैं। परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने इस हीरे को तराश कर अपनी चमक बिखेरने के लिए समाज को सौंप दिया, यह हीरा विहार करते हुए 14 प्रान्तों में अपनी चमक फैलाते हुए वर्तमान समय में पिड़ावा (राज.) में विराजते हुए अपनी मधुर मुस्कान ओजस्वी वाणी एवं धर्म वात्सल्य द्वारा श्रावकों का हृदय जीत रहा है। गुरुवर का दयालु स्वभाव, उनकी श्रावकों को मोक्ष मार्ग में अग्रसर करने की उत्कृष्ट भावना, छोटे-छोटे नियम संयम दिलाने की उत्कंठा नवयुवकों को इतनी भा रही है कि वे न केवल गुरुदेव के प्रवचनों में, आहारचर्या में और वैयावृत्ति में सदा तत्पर रहते हैं अपितु गुरुवर की छोटी से छोटी आज्ञा पालन करने को अपना सौभाग्य मानते हैं।

आचार्य श्री के संघ में पूज्य 108 मुनि श्री भाग्यसागर जी, श्री महतसागर जी, श्री विभोरसागर जी, श्री सजग सागर जी, श्री सानन्द सागर जी मुनिराज एवं आदरणीया बाल ब्रह्मचारिणी बहिन श्री ऋषिका दीदी विराजमान हैं। सम्पूर्ण संघ परम सरल स्वभावी, विनीत एवं मृदु भाषी होते हुए मोक्षमार्ग में अग्रसर है। बहिन श्री अपनी सुरीली वाणी से इतने अच्छे भजन सुनाती हैं कि श्रावक सुनते ही रह जाते हैं और वे बालक बालिकाओं को इतनी सरल भाषा में समझाती हैं कि वे प्रसन्नता से ओतप्रोत हो जाते हैं। पूज्य आचार्य श्री अपने संघ के मध्य इस प्रकार शोभित होते हैं जैसे तारामंडल के बीच चन्द्रमा सुशोभित होता है।

इतने सब व्यस्त कार्यक्रमों के मध्य में भी आचार्य श्री अपने लेखन के लिए इतना समय निकाल लेते हैं कि आपकी लेखनी से कई धर्म ग्रन्थ निसृत भी हुए हैं।

आपके द्वारा रचित कृतियों इस प्रकार हैं- धर्म भावना शतक, जैनागम संस्कार, तीर्थोदय काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान-शतक, आर्जव वाणी, पर्यूषण पीयूष, आर्जव कविताएँ, जिनवर स्तुति, साम्य भावना, आगम अनुयोग, जैन शासन का हृदय, लोक कल्याण (षोडशकारण) विधान, सदाचार सूक्ति काव्य आदि गुरुदेव कुछ पद्यानुवाद किए हैं जिनमें प्रमुख हैं- वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधि तन्त्र, द्रव्य संग्रह, तत्वसार एवं प्रश्नोत्तर रत्नमालिका आदि।

वर्षायोग में मुझे भी उक्त कृतियों में से कतिपय ग्रन्थों के स्वाध्याय का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनमें 'जैनागम संस्कार' प्रमुख हैं। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है। सरल भाषा में प्रश्नोत्तर के रूप ये इस प्रकार लिखा है कि एक साधारण श्रावक भी सहज रूप में धर्म के मर्म को आत्मसात कर लेता है, आध्यात्मिक रंग से सराबोर इस शास्त्र का शुभारम्भ ही आचार्य श्री ने महामन्त्र णमोकार के माहात्म्य से किया है। धर्म का स्वरूप बतलाते हुए आचार्य श्री लिखते हैं कि

'' जो संसार के दुख से उठा कर स्वर्ग मोक्ष सुख के स्थान में रख दे, उसे धर्म कहते हैं'
''धम्मो वत्थु सहावो, खमादि भावो य दस विहो धम्मो, रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो''[3]
स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा

वस्तु का स्वभाव धर्म है क्षमादि भाव रूप दस प्रकार के धर्म हैं, रत्नत्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र धर्म है आगे निश्चय दृष्टि से 'चारित्तं खलु धम्मो' मिथ्यात्व व कषाय से रहित मुनियों का समता भाव रूप चारित्र ही धर्म है ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द ने 'समयसार' ग्रन्थ में कहा है।

अगले अध्याय में तीर्थंकर के स्वरूप का वर्णन किया है ''तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म के प्रभाव से जिनके कल्याणक होते हैं एवं जिन केवली भगवान के समवशरण की रचना होती है, ऐसे धर्म तीर्थ के प्रवर्तक को तीर्थंकर कहते हैं।' इसी के अन्तर्गत उन लोक कल्याणकारी दर्शन विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का वर्णन है जिनसे व्यक्ति तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर स्वयं भी तीर्थंकर बन सकता है, यह विशेषता जैन धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म में प्राप्त नहीं होती कि मनुष्य स्वयं भगवान बन सकता है। आगे जैन श्रावक के कर्त्तव्यों का बोध कराते हुए उन्हें मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। जैन धर्म में संस्कारों का महत्व बतलाते हुए ग्रन्थ के आरम्भ में ही कहा है कि

''जैन धर्म में भव्य जनों का, नीति नियम शृंगार रहा।
धर्म ग्रहण जो संस्कार है, वहीं आत्म उद्धार रहा॥
रत्नत्रय को धारें भविजन, महावीर को नमन करें।
जैनागम के संस्कार से, मुक्ति पुरी को गमन करें॥''[4]

श्रावकों के करने योग्य षट् आवश्यकों में देवपूजा प्रमुख है आगे इसी देवदर्शन की विधि का वर्णन करते हुए सप्त व्यसन को त्याग कर शाकाहारी बनने का संदेश दिया है। देवपूजा का महात्म्य बताते हुए जैन धर्म का माहात्म्य बतलाया है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय धारण किए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। आचार्य उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' ग्रन्थ के पहले ही सूत्र में ''सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः'' का उल्लेख किया है। इसी रत्नत्रय के स्वरूप का आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ने विस्तार से वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन का लक्षण बतलाते हुए आचार्य श्री ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार से उद्घृत की गई पंक्तियाँ लिखी हैं।

''श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़ मष्टागं, सम्यग्दर्शन मस्मयम्॥''[5]

अर्थात् परमार्थ भूत देव-शास्त्र-गुरु का तीन मूढ़ताओं से रहित, आठ अंगों सहित और आठ प्रकार के मदों से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र का विस्तार से वर्णन करते हुए सप्त तत्त्व एवं छह द्रव्यों का ज्ञान कराया है। अध्यात्म गंगा में स्नान कराते हुए उर्ध्वलोक मध्यलोक एवं अधोलोक का वर्णन किया है। मुनियों की नवधा भक्ति सहित दान के स्वरूप का वर्णन किया है। आचार्य श्री ने यही अपनी लेखनी को विराम न देते हुए, समाधिमरण माहात्म्य एवं पर्व व्रत माहात्म्य का स्वरूप समझाया। गुरुवर अपने प्रवचनों के मध्य में सहज रूप से श्रावकों को छोटे-छोटे नियम संयम ग्रहण कराते रहते हैं और श्रावक सहर्ष निष्ठा पूर्वक उन व्रतों को ग्रहण करते रहते हैं। अष्ट कर्मों से छुटकारा पाये बिना कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता इसीलिए अष्टकर्मों का विस्तार से वर्णन किया है। जीव के एक से लेकर चौदह गुण स्थानों का विवेचन एवं अध्यात्म में उपयोग एवं

स्वरूपाचरण पर भी अच्छे से प्रकाश डाला है। जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत अनेकान्त दृष्टि पर लिखा है ''इस जगत् में जितनी भी वस्तुएँ देखने एवं जानने में आ रही हैं, वे अनेक अन्त अर्थात् धर्म से सहित हैं, ऐसी दृष्टि या मान्यता का नाम अनेकान्त दृष्टि है'' साथ ही यह भी बतलाया कि धर्म में नैतिकता एवं शिष्टाचार का कितना महत्व है।

आचार्य श्री जी ने ना केवल जैनागम संस्कार अपितु अपनी अन्य कृतियों ''अध्यात्म गीता'' एवं सदाचार सूक्ति काव्य एवं आध्यात्मिक कविताएँ'' के माध्यम से भी अध्यात्म पर बल दिया है यथा

''कर्मो की बेड़ी भव में ही, बाँधे रहती निज को ही।
शुद्ध ध्यान के तीक्ष्ण आस्रव से, कटे बेड़ी निज ही सबकी''[6]

अपनी कृति 'अध्यात्म गीता' में उल्लेखित है कि 'पर पदार्थ से मन हटा, होय आत्म का ध्यान निज स्वभाव से कर्म क्षय, समयरूप सुख मान''।[7]

इस प्रकार आचार्य श्री की सभी कृतियों के माध्यम से अध्यात्मिक एवं समीचीन व्यवहारिक जीवन में गुरुवर के साहित्य का विशेष योगदान रहा है।

आचार्य श्री की प्रेरणा से पिड़ावा नगर में एक विशाल प्रवचन हाल आचार्य आर्जवसागर सभागार का निर्माण हुआ है जहाँ पूरी समाज एक साथ बैठकर प्रवचन आदि कार्यक्रम देख सुन सकती है। न केवल प्रवचनहाल अपितु एक नवीन चाँदी का दो मंजिला रथ का निर्माण भी हुआ है। गुरुदेव की सदैव यह भावना रहती है सभी जीव सुखी हों और मोक्ष प्राप्त करें इसी के अन्तर्गत यहाँ सोलहकारण के भव्य आयोजन का अवसर हमें प्राप्त हुआ। हमारी उत्कर्ष भावना है कि आचार्य श्री स्वयं भी तीर्थंकर पद प्राप्त करें और हमें भी वह सुअवसर प्राप्त हो कि हम भी समवशरण में बैठकर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें।

आचार्य श्री का परम उपकार है जो मुझे यह लेख लिखने का अवसर प्रदान किया, अपनी अल्प बुद्धि से मैंने ये दुस्साहस किया है। विद्वत्जन कृपया इस पर अपने सुझाव देकर उपकृत करने की कृपा करें।

पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज के पावन चरणों में शत्-शत् वंदन करते हुए इन पंक्तियों के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ कि :

''सिद्धों की श्रेणी में आने वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को मेरा नम्र प्रणाम है।
मेरा नम्र प्रणाम है- मेरा नम्र प्रणाम है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. देव-शास्त्र-गुरु पूजन (केवल रवि....)
2. तीर्थोदय काव्य, आचार्य श्री आर्जवसागर जी, पद्य -554, पृष्ठ 127
3. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा
4. जैनागम संस्कार, आचार्य श्री आर्जवसागर जी
5. रत्नकरण्डश्रावकाचार- आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी
6. मंगलाचरण अध्यात्म गीता-आचार्य श्री आर्जवसागर जी
7. अध्यात्मगीता आचार्य श्री आर्जवसागर जी

पंजीयन / रजि-002/बी-113/2020-21

आर्जव तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट, भोपाल के अंतर्गत

आचार्य आर्जवसागर शास्त्र प्रकाशन एवं संघ सेवा समिति

शिरोमणि संरक्षक 100,000/- या अधिक, परमसंरक्षक 50,000/- या अधिक, संरक्षक रु. 21,000/- या अधिक, विशेष सत्-दान रु. 11,000/- या अधिक, सत्दान रु. 5,100/- या अधिक अथवा अपनी शक्ति के रूप में राशि समर्पित करने वाले श्रावकों के विवरण एकत्रित कर सम्मानीय नाम के रूप में भाव-विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित किये जायेंगे। दान राशि पर 80 जी प्रावधानों के अंतर्गत आयकर से छूट मिलेगी।

अध्यक्ष	कोषाध्यक्ष	मंत्री
राजेन्द्र जैन	**जयदीप जैन (मोनू)**	**प्रो.सुधीर जैन**
9425140653	9826340190	8839242707

दान राशि जमा कराने हेतु केनरा (Canara bank) बैंक डिटेल- आर्जव तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट अकाउंट नं. 11018767287 IFSC Code CNRB0005101 MICR CODE-462015022

भाव विज्ञान पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन-पत्र

मैं ..... मधु (शहद), मांस, मद्य (नशा) का त्यागी, धर्म का अनुसरण करने वाला पिता/पति श्री .....निवासी..... से **भाव विज्ञान पत्रिका** हेतु सम्मानीय संरक्षक सदस्य रुपये 11,000/- ☐ संरक्षक सदस्य रुपये 5,100/- ☐ विशेष सदस्य रुपये 3,100/- ☐ आजीवन सदस्यता रुपये 2,100/- ☐ राशि देकर आजीवन सदस्यता स्वीकार करता/ करती हूँ।

मेरा पता :- .....

जिला ..... प्रदेश .....पिनकोड ..... एस.टी.डी. कोड .....

फोन नम्बर/ मोबाईल ..... ई-मेल ..... है।

दिनांक हस्ताक्षर

कार्यालयीन उपयोग हेतु

श्री/श्रीमति ..... पिता श्री ..... को सम्मानीय संरक्षक/संरक्षक/विशेष सदस्य/आजीवन सदस्यता क्रमांक .....प्रदान की जाती है।

दिनांक हस्ता. सम्पादक/प्रबन्ध सम्पादक

नोट:- "भाव विज्ञान" भोपाल के पक्ष में (ड्राफ्ट अथवा) स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, टी.टी. नगर, भोपाल में नेट/कोर बैंकिंग सुविधा के अंतर्गत सेविंग बैंक एकाउंट नंबर-63016576171 एवं IFS Code SBIN0030005 में नगद राशि सीधे जमा कर व रसीद प्राप्त कर प्रकाशक को रसीद की छायाप्रति प्रेषित कर सदस्यता शुल्क की रसीद प्राप्त की जा सकती है।

समाचार

-सहसंपादकीय

बहिन ऋषिका जैन, दमोह

अविस्मरणीय धर्म प्रभावना के उपरांत पिड़ावा से हुआ मंगल विहार

धर्मनगरी पिड़ावा में 2024 के पावन वर्षायोग उपरांत दिनांक 9 जनवरी 2025 को आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ का मंगल विहार पिड़ावा से डोला की ओर हुआ। डोला में आचार्य भगवंत ससंघ ने अति मनोज्ञ प्रतिमाओं के दर्शन किये। तदुपरांत सायंकाल की बेला में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के दर्शनार्थ मुनिश्री अरहसागर जी महाराज (आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित) पधारे। मुनिवर ने; आचार्य भगवन् की प्रदक्षिणा लगाकर उनकी रत्नत्रय कुशलता पूँछी एवं गुरु महिमा के गुणगान स्वरूप उद्बोधन भी दिया। 1-2 दिन के अल्प प्रवास उपरांत आचार्य भगवन् ससंघ का मंगल विहार भवानीमण्डी की ओर हो गया।

बाल-संस्कार कार्यक्रम एवं आदर्श विद्या मंदिर में प्रवचन

दिनाँक 12 जनवरी 2025 को आचार्य श्री ससंघ की मंगल आगवानी भवानीमण्डी में की गई। जिसमें भँवर सिंह कछवाहा सहित अनेक प्रतिष्ठितजन भी मौजूद रहे। कमेटीजनों ने आचार्य श्री समक्ष श्रीफल भेंट कर शीतकालीन वाचना हेतु निवेदन किया। लगभग 9-10 दिन के वास्तव्य का लाभ भवानीमण्डी वासियों को प्राप्त हुआ। जिसमें प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुदेव के मंगल प्रवचन, दोपहर में स्वाध्याय एवं सायंकाल में गुरुभक्ति उपरांत शंका समाधान, प्रश्नमंच, पाठशाला एवं जैनागम संस्कार ग्रंथ के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। इसी बीच दिनाँक 19 जनवरी 2025 को आचार्य भगवन् के मंगल सान्निध्य में बालक-बालिकाओं के लिये बाल-संस्कार कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया; जिसमें आचार्य श्री ने सभी बच्चों को जैनधर्म के आठ नियम सहित, फास्टफूड त्याग का नियम तथा अहिंसा एवं संस्कार पर आधारित उपदेश भी दिया। कार्यक्रम के दौरान पिड़ावा नगर कमेटी सहित अनेक स्थानों से धर्माबलम्बीजन पधारे। भवानीमण्डी कमेटी जनों द्वारा अतिथियों का स्वागत सम्मान भी किया गया।

दिनाँक 22 जनवरी 2025 को विहार के पूर्व आचार्य श्री ससंघ का लाभ आदर्श विद्या मंदिर स्कूल के छात्र-छात्राओं सहित शिक्षकों प्राप्त हुआ। लगभग 200 से 300 बच्चों को आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के मुख से अहिंसा का संदेश सुनने का लाभ प्राप्त हुआ। तदुपरांत आचार्य ससंघ का मंगल विहार कोटा माइंस/धर्मकाँटा (संजय मित्तल रामगंजमण्डी की) होते हुये झालरापाटन की ओर हो गया। दिनाँक 25 जनवरी 2025 को गुरुवर ससंघ का मंगल प्रवेश झालरापाटन में हुआ। आचार्य भगवन् ससंघ ने विशाल अतिशयकारी भगवान शांतिनाथ की अति मनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन किये। तदुपरांत गुरुदेव ससंघ मंचासीन हुये। भवानीमण्डी, पिड़ावा सहित स्थानीय जनों ने आचार्य परमेष्ठी की विशेष पूजन की। सभी श्रद्धालुओं को आचार्य श्री की दिव्य देशना का लाभ भी प्राप्त हुआ एवं कमेटीजनों सहित प्रतिष्ठित लोगों द्वारा आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज रचित नवीन कृति मोक्ष प्रदायक काव्य का विमोचन एवं भाव विज्ञान पत्रिका के दिसंबर अंक का विमोचन भी

किया गया। 3 दिन के अल्प प्रवास उपरांत जूनी नसिया एवं जैन सरस्वती भवन श्रुत भण्डार के दर्शन कर दो दिनों के प्रवासोपरांत आचार्य भगवंत का विहार कवाई होते हुये खानपुर, चाँदखेड़ी की ओर हो गया।

चाँदखेड़ी में मनाया गया 11 वाँ आचार्य पदारोहण दिवस

चन्द्रोदय अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी में दिनाँक 2 फरवरी 2025 को आचार्य भगवन् श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज ससंघ की भव्य मंगल अगवानी की गई। चाँदखेड़ी-खानपुर वासियों को आचार्य श्री के 11 वें आचार्य पदारोहण दिवस को मनाने का महा सौभाग्य प्राप्त हुआ। माघ शुक्ल षष्ठी का वह शुभ पावन दिवस जब इंदौर नगरी में आचार्य श्री सीमंधरसागर जी महाराज ने अपना आचार्य पद गुरुदेव को सौंपा था। धन्य है ऐसा पावन दिवस। कार्यक्रम के दौरान सर्वप्रथम खानपुर महिलामण्डल द्वारा मंगलाचरण किया गया। तदुपरांत दमोह, दिल्ली, पिड़ावा, भवानीमण्डी, झालरापाटन से पधारे गुरुभक्तों द्वारा चित्र अनावरण, द्वीप प्रज्ज्वलन किया गया। पिड़ावा कमेटीजनों को आचार्य श्री के पाद प्रक्षालन का महासौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य भगवन् ससंघ को शास्त्र दान करने का सौभाग्य चन्द्रोदय तीर्थ क्षेत्र कमेटीजनों को प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम आचार्य भगवन् की संगीतमय मांगलिक पूजन की गई। तदुपरांत आचार्य श्री ने गुरु महिमा गुणगान रूप दिव्य देशना के द्वारा धर्मसभा को संबोधित कर लाभान्वित किया। कार्यक्रम के अंत में बाहर से पधारे अतिथियों का स्वागत सम्मान भी किया गया। एवं सभी के वात्सल्य भोजन की व्यवस्था भी की गई। दिनाँक 4 फरवरी 2025 को गुरुदेव ससंघ का मंगल विहार दिलोद हाथी, छबड़ा, धरनावदा, रुठियाई, बजरंगढ़ होते हुये गुना नगर की ओर हो गया।

आचार्य श्री के सान्निध्य में गुना में चतुर्दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन

दिनांक 16 फरवरी 2025 को आचार्य श्री ससंघ की भव्य मंगल अगवानी गुना नगर के बड़े मंदिर जी में की गई। आचार्य श्री के सान्निध्य में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रथम समाधि दिवस के उपलक्ष्य में चतुर्दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया। जिसमें प्रथम दिवस दिनांक 16 फरवरी 2025 को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के मंगल चरणों की अगवानी की गई तदुपरांत आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के मांगलिक प्रवचन भी संपन्न हुये। रात्रिकालीन में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें अजय अहिंसा बाकल सहित अनेक कवियों की कविताओं का लाभ लोगों को प्राप्त हुआ। द्वितीय दिवस 17 फरवरी को श्री वासुपूज्य जिनालय में भगवान वासुपूज्य का महामस्तकाभिषेक का कार्यक्रम किया गया व आचार्य श्री के मुखारविंद से शांतिधारा भी संपन्न कराई गई तथा रात्रिकालीन कार्यक्रम में टीकमगढ़ के कलाकारों द्वारा महावीर भवन में नृत्य नाटिका का मंचन किया गया। तृतीय दिवस दिनाँक 18 फरवरी 2025 को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रथम समाधि दिवस पर विन्याञ्जलि सभा का आयोजन किया गया एवं आचार्य छत्तीसी विधान के माध्यम से गुरु का गुणगान किया गया। रात्रिकालीन कार्यक्रम में 48 दीपक द्वारा संगीतमय भक्तामर जी के पाठ का आयोजन किया।

अंतिम दिवस दिनाँक 19 फरवरी 2025 को भक्तामर विधान का आयोजन किया गया एवं सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। तदुपरांत आचार्य भगवंत की दिव्य देशना का लाभ अपार जनसमूह को प्राप्त

हुआ। दिनाँक 20 फरवरी 2025 को आचार्य भगवन् ससंघ का मंगल विहार गुना से नईसराय होते हुए महिदपुर की ओर हो गया।

महिदपुर (अशोकनगर) में गुरु सन्निध्य में विमानोत्सव का आयोजन

दिनाँक 22 फरवरी 2025 को आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ के मंगल सान्निध्य में महिदपुर में विमानोत्सव का आयोजन किया गया जिसमें अशोकनगर, ईसागढ़, साढ़ौरा, भोपाल, पिड़ावा (राज.) से भारी संख्या में लोग सम्मिलित हुये। गुरु सान्निध्य में श्रीजी की शोभायात्रा निकाली गई तदुपरांत गुरुवर ससंघ मंचासीन हुये। मंगलाचरण पूर्वक कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। गुरु मुख से विमानोत्सव विराजित श्रीजी की शांतिधारा संपन्न कराई गई तदुपरांत आचार्य भगवंत की दिव्य देशना का लाभ भी अपार जनसमूह को प्राप्त हुआ। कार्यक्रम उपरांत आचार्य श्री ससंघ का मंगल विहार महिदपुर से बमनावर होते हुये ईसागढ़ की ओर हो गया।

घर को स्वर्ग बनाना है तो धर्म करो.....
अनुष्ठानों के माध्यम से होती हैं विघ्न बाधाएँ दूर

गुरुजी कहते हैं कि धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा-विधान आदि करने से हर पल-हर क्षण बहुत पुण्य की प्राप्ति होती है। अच्छी भूमि में, अच्छा खाद डालने पर अच्छी फसल प्राप्त होती है। उसी प्रकार जीवन में भगवान की भक्ति और उसकी फल प्राप्ति हेतु आत्मा को अच्छे संस्कार में लगाना होगा। आत्मा को शुद्ध-साफ करना होगा; जिससे हमारा जीवन रूपी वृक्ष अच्छा फूलेगा फलेगा।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि विभिन्न अनुष्ठानों में वीतराग भगवान की पूजा-उपासना की जाती है। पाप कर्मों के फले स हमारे जीवन में दुःख-शोक आते हैं परंतु ऐसी पूजाएँ रचाने से, अनुष्ठान करने से, भक्ति करने से सभी विघ्न बाधाएँ दूर हो जाती हैं और पाप कर्म से निवृत्त होकर सुख रूपी आनंद प्राप्त होता है।

भगवान की पूजा; अर्हत् भक्ति है; जो तीर्थंकर पद को दिलाने वाली होती है। वह घर भी स्वर्ग बन जाता है जहाँ धर्म है और वह घर भी नरक बन जाता है जहाँ धर्म नहीं है, संस्कार नहीं है। अतः धर्म में बहुत बड़ी शक्ति है। अतः हमेशा धर्म करते रहे, धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन करते रहो। पूजा, दान, भक्ति, हमेशा करते रहो। ये ही हमें सच्चा सुख प्राप्त कराएँगे। मोक्ष रूपी लक्ष्मी को दिलाएँगे।

प्रत्येक मानव का जीवन कर्त्तव्य से शोभा पाता है और यदि धर्म ही हमारा कर्त्तव्य बन जाये तो सोने में सुहागा हो जाये। धर्म की महिमा को समझकर, धर्ममार्ग को अपना कर्त्तव्य मानकर लोग इस जीवन को सुधार लें तो सुखी होते ही हैं। साथ ही साथ अगले जीवन/भव को भी सुखी बनाते हैं। धर्म हमें वर्तमान में तो सुख-शांति देता ही है और भविष्य में निश्चित रूप से सुख शांति प्रदान कराता है।

साभार-गुरु आर्जव वाणी

आचार्य श्री के 11 वें आचार्य पदारोहण दिवस के कार्यक्रम पर चाँदखेड़ी पधारे पिड़ावा आदि नगरों के भक्तगण।

आचार्य भगवन् के करकमलों में आचार्य पदारोहण के अवसर पर शास्त्र दान करते हुये श्री राजेश जी सपरिवार दमोह।

आचार्य भगवन् का पाद प्रक्षालन करते हुए डॉ. विजय जैन-चेतना जैन गंजबासौदा।

गुना में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चरण चिह्न की अगवानी में मिला आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज का सान्निध्य।

महिदपुर (अशोकनगर) में विमानोत्सव कार्यक्रम में आचार्य भगवन् की दिव्य देशना सुनते हुये श्रद्धालुजन।

नईसराय में आचार्य श्री आर्जवसागर जी के करकमलों में शास्त्रदान करते हुये अशोकनगर एस.पी.(डी.आई.जी.) विनीत जैन।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज की नवधाभक्ति का सौभाग्य प्राप्त करते हुये मुनि श्री निकलंकसागर जी महाराज के पूर्वावस्था के परिवारजन साड़ीरा।

धरनावदा की अति मनोज्ञ प्राचीन प्रतिमाओं के दर्शन।

RNI Reg No MPHIN/2007/27127

ISSN: 3048-9954 (Print)

प्रति

ईसागढ़ में आईपीएस अकेडमी के शिक्षकगण सहित समाजजन आचार्य भगवन् को शास्त्र भेंट करते हुये।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज से साहित्य प्राप्त करते हुये राजेश जी जैन ठेकेदार ईसागढ़।

आईपीएस अकेडमी (स्कूल) ईसागढ़ में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के मुखारविंद से अहिंसा का उपदेश सुनते हुये विद्यालय के छात्र-छात्राएँ।

गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज के दर्शनार्थ पधारी इन्स्पेक्टर मोनिका जैन।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ के विहार में सेवाएँ देते हुए शासकीय ऑफिसर्स।

आदर्श विद्या मंदिर भवानीमण्डी स्कूल के शिक्षकगण आचार्य श्री का आशीर्वाद ग्रहण करते हुये।

भवानीमंडी में आदर्श विद्या मंदिर में आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के प्रवचन सुनते हुये विद्यार्थीगण।

स्वामी एवं प्रकाशक : श्रीमती सुषमा जैन द्वारा मुद्रक : पवन कुमार जैन मो.:9826240876 द्वारा पारस प्रिन्टर्स, 207/4, साईबाबा काम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं एमआईजी-8/4, गीतांजली काम्प्लेक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित।

सम्पादक - डॉ. अजित कुमार जैन, MIG-8/4, गीतांजली काम्प्लेक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल-462003 फोन : 7222963457, 9425601161